शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 10 अंक : 9 1 अप्रैल, 2018

(वैशाख, विक्रम संवत् 2075)

संस्थापक
स्व. मुकुन्द राव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में
प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का
सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा
चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

नैतिक समृद्धि का आधार : विद्या ❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

शिक्षा आज एक आजीविका कमाने का माध्यम बन गई है। साथ ही शिक्षा आर्थिक समृद्धि का वाहक भी है, जबकि विद्या नैतिक समृद्धि का द्योतक है। अतः देश सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर महान नही बनेगा, उसे महान राष्ट्रों की श्रेणियों में अग्रसर होने के लिए नैतिक समृद्धि आवश्यक है, जिसे शिक्षा द्वारा अर्जित कर सकते हैं। विश्वविद्यालयी उच्च डिग्री प्राप्त कर लाखों के पैकेज पर कार्य करने का विचार आज की पारिवारिक पृष्ठभूमि में जड़ें जमा चुका है। इसी कारण जीवन शैली में परिवर्तन आया है। सभी विद्वानों ने विद्या को समग्र विकास का माध्यम माना है। शिक्षा, विद्या के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक माध्यम है।

अनुक्रम

4.	शिक्षा को बदलें विद्या में	- सन्तोष पाण्डेय
8.	भारतीय संदर्भ और बाल विकास	- डॉ. सुमन बाला
13.	विद्या का स्थान कल व आज	- डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल
15.	उपनिषदों में निहित है मानव निर्माण की शिक्षा	- बजरंग प्रसाद मजेजी
17.	Vidyay Amrutam Asnute	- Dr. TS Girishkumar
19.	उच्च शिक्षा में अनुशासन	- डॉ. रेखा यादव
21.	उच्च शिक्षा में अनुशासन की स्थापना	- डॉ. प्रकाश चंद्र अग्रवाल
23.	विज्ञान शिक्षा की दशा और दिशा	- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
25.	शिक्षा : आशंकाओं का आकाश	- जगमोहन सिंह राजपूत
27.	यहाँ और अब में निहित है मेरी अमरता	- विलियम हरमन्स
29.	शिक्षा क्षेत्र में इंस्पेक्टर राज का अंत	- अभिनव प्रकाश
31.	जलवायु परिवर्तन : कृषि पर मंडराता खतरा	- डॉ. अनीता मोदी
33.	आस्था के राजा-रवि वर्मा	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
35.	अभिवादन (कुटुम्ब प्रबोधन-प्रथम अध्याय)	- हनुमान सिंह राठौड़
37.	भगिनी निवेदिता के शिक्षा-विचार	- उमेश कुमार चौरसिया
39.	प्रस्ताव (प्रतिनिधि सभा)	
40.	गतिविधि	

विद्या अमरता की साधिका ❑ डॉ. ओमप्रकाश पारीक

आज सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण में शिक्षा पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं क्योंकि समाज में व्याप्त न्यूनताओं एवं अतिवादी प्रवृत्तियों का संपूर्णदोष शिक्षा पर ही आता है। निश्चित रूप से शिक्षा ही समाज को संस्कारित एवं परिष्कृत करती हुयी उन्नत बनाती है पर हमें उसके वास्तविक उद्देश्यों पर ध्यान देते हुये शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना होगा। आज हम शिक्षा के द्वारा केवल भोग को ही साध्य बना रहे हैं, अधिक से अधिक सुख-सुविधाओं युक्त जीवन जीने हेतु प्रभूत धन की आवश्यकता है और वही हमारी शिक्षा प्रदान कर रही है।

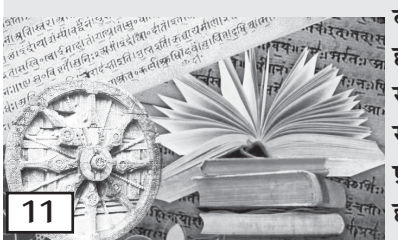

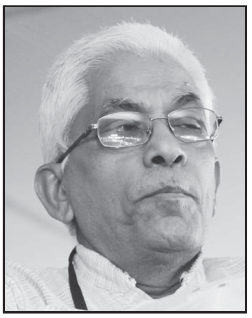

भारतीय विद्या पद्धति जिसे सभी सामाजिक, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय समस्याओं का अमृतरूपी निदान माना गया वह भौतिकता व व्यक्तिवादी शिक्षा व्यवस्था के व्यापक प्रभाव में आने से अमृत के बजाय 'सामाजिक विष के रूप में प्रभावी बन गई है।' आज जीवन के सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई है। स्कूली शिक्षा अव्यवस्था व अकुशलता का प्रतीक बन गई है। माध्यमिक शिक्षा येन केन प्रकारेण मात्र परीक्षा पास करने का माध्यम बन गई है। उच्च शिक्षा जो प्रगति का इंजन मानी जाती है, उद्देश्य विहीन हो चुकी है। देश की बौद्धिक क्षमता के द्योतक विश्वविद्यालयों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का खुलकर दुरुपयोग हो रहा है। अनेक प्रमुख विश्वविद्याल देशद्रोही वातावरण के पोषक हो रहे हैं

शिक्षा को बदलें विद्या में

❑ सन्तोष पाण्डेय

ईशोपनिषद् के एक मंत्र में विद्या को अमृत माना गया है। विद्या मनुष्य को अमृत्व प्रदान कर सकती है। विद्यावान् व्यक्ति, अपने आदर्शों, आचरण व व्यवहार तथा मानव के कल्याण व समाज के उत्थान में रचनात्मक योग देकर जन साधारण के लिये प्रतिमान बनकर अमृत्व प्राप्त कर सकता है। शिक्षा ज्ञान प्राप्ति का साधन है। ईशोपनिषद् के इस मंत्र में बताया गया है कि विद्या पूर्ण तभी होती है, जब इसके दोनों पहलुओं अर्थात् विद्या व अविद्या पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। विद्या जहाँ भौतिक संसाधनों की प्राप्ति, उपभोग से संबंधित ज्ञान प्राप्ति का साधन है। वहीं दूसरी ओर अविद्या भौतिकता से परे ध्यान केन्द्रित करते हुये अध्यात्म, श्रेष्ठ आदर्शों, श्रेष्ठ व्यवहार, उचित-अनुचित भेद, नैतिकता स्वाध्याय की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। विद्या की पूर्णता तभी सिद्ध होती है, जब विद्या व अविद्या दोनों का ज्ञानार्जन कर ज्ञानार्थी उसे व्यवहार में प्रयोग करता है। अविद्या का ज्ञान प्राप्त किये बिना विद्या एक पक्षीय है। भारतीय दर्शन में निहित न्यायसूत्र, जिसके कि अनेक भाष्य उपलब्ध हैं। ज्ञान पर चर्चा में ज्ञान, ज्ञान के स्रोत एवं इसके विभिन्न रूपों पर ध्यान देते हुये कहा गया है कि ज्ञान में ज्ञानार्थी के परिमार्जन का गुण होना चाहिये। ज्ञान यदि परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा ज्ञानार्थी का परिमार्जन नहीं कर पाता है, तो वह विद्या अपूर्ण है। ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में ज्ञानार्थी में होने वाले परिवर्तन उसका परिमार्जन करते हैं। यह परिमार्जन ही संस्कार निर्माण है, जो ज्ञानार्थी को संस्कृति व सभ्यता का वाहक बनने के रूप में प्रकट होती है। अविद्या व विद्या के प्राप्त ज्ञान से ही परिमार्जन की प्रक्रिया द्वारा मनुष्य की आन्तरिक क्षमताओं का प्रस्फुटीकरण होता है तथा श्रेष्ठ मानव का निर्माण होता है। इसी प्रक्रिया में मनुष्य समाजोपयोगी सदस्य बनना है। परिमार्जन से युक्त मानव में श्रेष्ठ व शाश्वत जीवन मूल्यों के साथ सांस्कृतिक मूल्य समाहित होते हैं। नैतिक मूल्यों, राष्ट्र, धर्म, देश व समाज के प्रति दायित्व बोध निर्माण में शाश्वत जीवन मूल्य सांस्कृतिक मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संपादकीय

शिक्षा व विद्या समानार्थक से प्रतीत होते हैं। वास्तव में शिक्षा दोनों आयामों वाली विद्याओं में पारंगत होने का माध्यम है। भारतीय विद्या दर्शन के अनुसार विद्या की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य होना चाहिये परन्तु कालान्तर में इसके स्वरूप में अन्तर आया है। आज के सन्दर्भ में विद्या, शिक्षा का वह स्वरूप बन गयी है जिसमें ज्ञान की शिक्षा तो दी

जाती है, परन्तु उस ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने से कतराती है, जिससे व्यक्ति में परिमार्जन की प्रक्रिया प्रभावित होती है, और शिक्षा एक पक्षीय बन कर रह जाती है। वर्तमान में शिक्षा में अविद्या का विलगाव होने से विद्या भौतिक उन्नति तक सीमित हो गई है। शिक्षा व्यक्ति की भौतिक उन्नति का प्रतीक बन गई है जो इस उन्नति में स्वहित, सीमित सामाजिक संबंध, परंपरा पालन से विमुखता, अधिकारों के प्रति जागरूकता मानवीय संवेदनाओं के प्रति उदासीनता जैसी प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट हो रही है। पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति जो भौतिकता व व्यक्तिवाद के व्यापक प्रभाव से युक्त है, ने वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया है। यह भारतीय विद्या के अविद्या संबंधी पहलू को पश्चिमी दर्शन की दृष्टि से देखती है। इस शिक्षा व्यवस्था में भारतीय जीवन मूल्यों व शाश्वत जीवन मूल्यों, परिवार समाज के प्रति दायित्वों के पालन को शिथिल कर पश्चिमी जीवन दर्शन व मूल्यों को बढ़ावा दिया है। ऐसी शिक्षा प्रणाली में शिक्षा ग्रहण करने वाला व्यक्ति का व्यक्तित्व व आचरण प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति से शिक्षित व्यक्ति के व्यक्तित्व व आचरण से भिन्न हो गया है। भौतिकता व व्यक्तिवाद से ग्रसित व्यक्ति की सफलता का दायरा संकुचित व अल्पकालीन होता है, जिससे वह अमृत्व प्राप्त नहीं कर सकता है। यह आज के भारतीय समाज की व्याधि बन चुकी है। इस व्याधि का उपचार भारत की प्राचीन द्विआयामी विद्या व्यवस्था को अपनाकर ही हो सकता है।

भारतीय विद्या पद्धति जिसे सभी सामाजिक, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय समस्याओं का अमृतरूपी निदान माना गया वह भौतिकता व व्यक्तिवादी शिक्षा व्यवस्था के व्यापक प्रभाव में आने से अमृत के बजाय 'सामाजिक विष के रूप में प्रभावी बन गई है।' आज जीवन के सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई है। स्कूली शिक्षा अव्यवस्था व अकुशलता का प्रतीक बन गई है। माध्यमिक शिक्षा येन केन प्रकारेण मात्र परीक्षा पास करने का माध्यम बन गई है। उच्च शिक्षा जो प्रगति का इंजन मानी जाती है, उद्देश्य विहीन हो चुकी है। देश की बौद्धिक क्षमता के द्योतक विश्वविद्यालयों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का खुलकर दुरुपयोग हो रहा है। अनेक प्रमुख विश्वविद्याल देशद्रोही वातावरण के पोषक हो रहे हैं, व देश व समाज की बर्बादी के नारों से गूँज रहे हैं। देश की सभी प्रकार की वैधानिक व्यवस्था को चुनौती दी जा रही है। देश प्रेम व राष्ट्र प्रेम की भवनाएँ गंभीर उदासीनता में बदल रही है। राजनीति के सभी मानदण्ड धूल-धूसरित हो रहे हैं। संसद जैसी सर्वोच्च संस्थाएँ नियमित कार्य करने में असमर्थ हो रही है। सांसद देश के लिये कानून बनाने के स्थान पर कानून के उल्लंघन को अपवाद बनाने के स्थान एक नियमित घटना बना रहे हैं। देश कहाँ से प्रेरणा प्राप्त करे, दिखायी नहीं देता है। देश की युवा शक्ति राष्ट्र निर्माता बनने के स्थान पर नौकरी चाहने वालों की भीड़ में परिवर्तित हो गयी है। किताबी शिक्षा में युवा शक्ति को कौशल और प्रशिक्षण से दक्ष व पारंगत बनाने वाली शिक्षा व्यवस्था कौशल रहित अकुशल श्रम शक्ति में बदल रही है। कृषि व उद्योगों में नवाचारों व नई तकनीक को अपनाने की अक्षमता से देश का विकास अवरुद्ध है। बैंकिंग व्यवस्था चरमरा रही है। बैंकों की ऋण व्यवस्था में धोखा-धड़ी बढ़ने व एनपीए के बोझ से बैंक अर्थव्यवस्था में भूमिका निभाने में असमर्थ है। देश में बढ़ती कानून व व्यवस्था की असन्तोषजनक स्थिति जैसी स्थितियाँ नैतिक स्तर में गिरावट का संकेतक है। इन स्थितियों में शिक्षा को अमृत कैसे स्वीकार किया जाय? एक प्रश्न चिह्न है। समाज में भेदभाव में वृद्धि सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ जीवन मूल्यों एवं शाश्वत मूल्यों के पालन में व्यापक शिथिलता, व्यापक भ्रष्टाचार व दुराचार, छोटे-छोटे वैयक्तिक लाभ के लिये व्यापक हितों का परित्याग इत्यादि के लिये परोक्ष रूप से पश्चिमी भौतिकतावादी व व्यक्तिवादी शिक्षा ही जिम्मेदारी है। व्यक्तियों, परिवारों एवं सामाजिक संस्थाओं में दायित्व निर्वाह में विफलता तथा चारित्रिक गिरावट गंभीर चिन्ता का विषय है। इस पर चिंतन-मनन अति आवश्यक है।

भारतीय शिक्षा को उपर्युक्त दोषों से मुक्त कर एक बार फिर से भारतीय शिक्षा को अमृत बनाने हेतु आवश्यक है कि शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर अध्यात्म, चारित्रिक गुणों, अनुशासन, स्वाभिमान एवं स्वावलंबन, जीवन मूल्यों एवं शाश्वत जीवन मूल्यों से युक्त शिक्षा व्यवस्था को अपनाया जाय। प्राथमिक स्तर की शिक्षा से नैतिक मूल्यों, सदाचार व जीवन मूल्यों पर आधारित पाठ्यक्रम बनाये जायें। बच्चों को सांस्कृतिक मूल्यों एवं पर्यावरणीय संस्कृति से परिचित कराया जाय। अधिकारों से अधिक कर्तव्य पालन पर बल देने वाली पाठ्यपुस्तकों की रचना कर बच्चों को कर्तव्य बोध कराया जाय। माध्यमिक स्तर की शिक्षा में किताबी शिक्षा से अधिक बल कौशल विकास पर दिया जाय व स्वाभिमान व स्वावलंबन से परिचित कराया जाय। उच्च चारित्रिक आचरण का पालन हेतु बच्चों को स्वावलंबी व स्वाभिमानी बनाना अति आवश्यक है। उच्च शिक्षा के केन्द्रों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आवश्यक हो, परन्तु वहाँ के वातावरण में व्यापक परिवर्तन आवश्यक है। शैक्षिक वातावरण ज्ञान पिपासा को शांत कर नये विचारों के सृजन को प्रेरित करने वाली हो एवं इसे नवोन्मेष अपनाने के अनुकूल बनाना अपेक्षित है। उच्च शिक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका वैयक्तिक हित के बजाय सामाजिक हितों को प्राथमिकता देने, राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, देश प्रेम जैसी प्रवृत्तियों को पुष्ट करने वाले पाठ्यक्रम व अन्य कार्यक्रम संपन्न होने चाहिये। शिक्षा में अध्यात्म का पुट देकर ही विद्या को अमृत स्वरूप बनाया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षा को विद्या में रूपान्तरित किया जाय। ❑

नैतिक समृद्धि का आधार : विद्या

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

किसी भी राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिए विज्ञान व तकनीकी का मर्यादित उपयोग आवश्यक है। इसी के साथ आर्थिक प्रगति भी जुड़ी है, परंतु जैसे-जैसे देश आर्थिक रूप से समृद्ध बनने की ओर अग्रसर होता है वैसे-वैसे नैतिक मूल्यों में गिरावट दृष्टिगोचर होती है। समाचार पत्रों में जब सर्वव्यापी गिरावट का समाचार छपता है तब यह सोचने को एक जिज्ञासु व सृजनशील, चिंतनशील, व्यक्तित्व मजबूर हो जाता है कि इसके पीछे क्या कारण है? क्या आन्तरिक प्रदूषण, जो लालसा व तृष्णा को जन्म देता है या येन केन प्रकारेण धनाढ्य बनने की सोच? जब समाचार पत्रों में सुर्खियाँ बटोरते हैं, समाचार जैसे ललित मोदी कार्यवाही से बचने के लिए विदेश भागे, विजय माल्या बैंकों को चूना लगाकर विदेश भागने में सफल, नीरव मोदी द्वारा पी.एन.बी. के साथ मिलकर घोटाला, दिल्ली सरकार के मुख्य सचिव के साथ 'आप' विधायकों द्वारा मुख्यमंत्री की उपस्थिति में मारपीट, राजस्थान में चिकित्सकों द्वारा फर्जी होटल के बिलों का प्रकरण, लुधियाना के एक विद्यालय के प्रमुख की छात्र द्वारा गोलीमार कर हत्या, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार के समाचार आदि। ये सभी अखबारों की सुर्खियाँ उस राष्ट्र की हैं जो संस्कृति और सभ्यता का गढ़ है व विश्व का सांस्कृतिक गुरु माना जाता है। अत: एक बौद्धिक चिंतन वाला व्यक्ति उपर्युक्त सभी बातों का संज्ञान कर यह सोचने को मजबूर हो जाता है कि हम किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं? क्या भारतीय चिंतन व समग्र कल्याण की सोच का परित्याग कर वैभवशाली जीवन शैली व पश्चिम की उपभोगवादी सोच को आत्मसात् कर उसका अनुसरण तो नहीं कर रहे हैं? एक बार फिर प्रश्न, शिक्षा नीति, शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, शिक्षक आदि पर केन्द्रित हो जायेगा। शिक्षा प्रणाली के दोष, निरीक्षकों की कर्तव्यनिष्ठा व उत्तरदायित्व पर प्रश्न वाचक चिन्ह लगेगा। सेमीनार होंगे, कान्फ्रेंस होगी व यही निष्कर्ष

शिक्षा आज एक आजीविका कमाने का माध्यम बन गई है। साथ ही शिक्षा आर्थिक समृद्धि का वाहक भी है, जबकि विद्या नैतिक समृद्धि का द्योतक है। अत: देश सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर महान नही बनेगा, उसे महान राष्ट्रों की श्रेणी में अग्रसर होने के लिए नैतिक समृद्धि आवश्यक है, जिसे विद्या द्वारा अर्जित कर सकते हैं। विश्वविद्यालयी उच्च डिग्री प्राप्त कर लाखों के पैकेज पर कार्य करने का विचार आज की पारिवारिक पृष्ठभूमि में जड़ें जमा चुका है। इसी कारण जीवन शैली में परिवर्तन आया है। सभी विद्वानों ने विद्या को समग्र विकास का माध्यम माना है। शिक्षा, विद्या के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक माध्यम है अत: शिक्षा को एक साधन के रूप में उपयोग कर विद्या के उद्देश्यों को प्राप्त करना होगा तभी हमारी अवधारणा ''सर्वेभवन्तु सुखिन:' साकार होगी।

निकलेगा कि हमारे शिक्षा-प्रदाता संस्थान उच्च श्रेणी के नहीं हैं, हमारे पाठ्यक्रम समयानुसार नहीं हैं आदि आदि। नैतिक रूप से पुष्ट और सक्षम नागरिक तैयार करने हेतु हमें हमारी शिक्षा प्रणाली की समीक्षा करनी होगी ताकि नैतिकता का बीजारोपण बचपन से ही हो जाय, इस प्रकार के निष्कर्ष सेमीनार व संगोष्ठियों के होंगे। फिर एक बार अकादमिक विचार-विमर्श होकर दो या तीन दिवसीय संगोष्ठी समाप्त होकर एक नया दस्तावेज तैयार हो जायेगा। परंतु सम्पूर्ण परिचर्चा को जीवन में कौन उतारेगा यह यक्ष प्रश्न है। अत: एक बार फिर शिक्षा व विद्या को परिभाषित करना होगा। विद्या संस्कृत शब्द है, जिसका तात्पर्य 'सही ज्ञान' है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय में इसका अत्यधिक उपयोग होता था, स्पष्टता व उच्च अधिगम के रूप में इसका प्रयोग होता था। विद्या शब्द का उपयोग दक्षिण एशियाई भाषा समूह में उपयोग होता था, साथ ही पाली भाषा व सिन्हला (Sinhala) भाषा में इसका उपयोग, शिक्षा के द्वारा समग्र विकास व कल्याण के रूप में इसका उपयोग होता था। विद्या को तकनीकी भी कहा गया है। 14 विद्याओं का वर्णन ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद में है। विद्या वैदिक अध्ययन की एक शाखा है, प्राचीन काल में गुरुकुल व्यवस्था थी वहाँ विद्यार्थी अध्ययन करता व अध्ययन पूर्ण होने पर दीक्षांत समारोह का आयोजन होता था, जिसमें गुरु विद्यार्थी को यह प्रण स्मरण कराता कि जिन विद्याओं का तुमने अध्ययन गुरु-आश्रम में किया है उनका उपयोग समग्र मानव कल्याण के लिए करो, यही तुम्हारी दीक्षा है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में 'गुरु' शब्द का उपयोग होता था 'शिक्षक' शब्द का नहीं। इसी प्रकार गुरु ने शिक्षार्थी को सभी प्रकार की विद्या प्रदान कर उसके उपयोग का वर्णन किया है यह नहीं कहा कि तुमने यहाँ जो 'शिक्षा' प्राप्त की है उसका उपयोग मानवता के लिए करो। अत: यह स्पष्ट है कि विद्या का अर्थ असीमित है जबकि शिक्षा का तात्पर्य 'सीमित' है। जैसे हम आम भाषा में कहते हैं तुम्हारी शिक्षा कहाँ तक हो गई? जवाब आयेगा मैंने एम.ए./एम.एस.सी. किया है। आप यह नहीं पूछते कि तुम्हारी 'विद्या' कहाँ तक हो गई, स्पष्ट है कि विद्या का अर्थ व्यापक होने के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका उपयोग है। कहते हैं 'विद्या ददाति विनयम्' हम यह नहीं लिखते कि 'शिक्षा ददाति विनयम्'। हम परिवार में बच्चों का नामकरण करते हैं जैसे 'विद्याधर' अर्थात् विद्या को धारण करने वाला विद्वान, न कि 'शिक्षाधर' करते हैं। प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति में विद्या का महत्त्व रहा है। इसे अमरत्व का साधन माना है। तभी 'सा विद्या या विमुक्तये' का मंत्र भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। सनातन काल से ही 'गुरु-शिष्य' परम्परा के माध्यम से विद्या को जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है व ऋषि मुनियों के साथ-साथ समाज विद्या के महत्त्व पर संस्कृत आधारित श्लोकों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया है

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मः ततः सुखम्।।

अर्थात् विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन, धन से धर्म होता है और धर्म से सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार प्रार्थना जो हमारे समय में विद्यालयों में प्रात: काल होती थी।

दया कर दान विद्या का हमें परमात्मा देना,
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना।।

विद्या, तर्कशक्ति, विज्ञान, स्मृतिशक्ति, तत्परता और कार्यशीलता, ये छह गुण जिसके पास हैं उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है, ऐसा वर्णन निम्न श्लोक में है -

विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिः तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य नासाध्यमति वर्तते।।

विद्या के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है-

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

विद्या, मानवता, नैतिकता, मौलिकता, मानवीय संवेदनाओं, हमारी परम्पराओं, धरोहरों, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विचारों से परिपूर्ण, सम्पूर्ण मानवता के लिए निस्वार्थ, स्वयं की प्रेरणा से कार्य करने का संदेश देती है। जो व्यक्ति इस विद्या के उद्देश्य को जीवन में उतार लेता है, तभी वह अज्ञान से ज्ञानरूपी संसार में प्रवेश कर अपने मन की पवित्रता के साथ कार्य करता है, यही वास्तविक विद्या है। जैसा कि उपर्युक्त सभी श्लोकों में इसी प्रकार का भाव वर्णित है। यही ज्ञान का सार है। जबकि शिक्षा आज एक आजीविका कमाने का माध्यम बन गई है। साथ ही शिक्षा आर्थिक समृद्धि का वाहक भी है, जबकि विद्या नैतिक समृद्धि का द्योतक है। अत: देश सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर महान नही बनेगा, उसे महान राष्ट्रों की श्रेणी में अग्रसर होने के लिए नैतिक समृद्धि आवश्यक है, जिसे विद्या द्वारा अर्जित कर सकते हैं। विश्वविद्यालयी उच्च डिग्री प्राप्त कर लाखों के पैकेज पर कार्य करने का विचार आज की पारिवारिक पृष्ठभूमि में जड़ें जमा चुका है। इसी कारण जीवन शैली में परिवर्तन आया है। सभी विद्वानों ने विद्या को समग्र विकास का माध्यम माना है। शिक्षा, विद्या के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक माध्यम है अत: शिक्षा को एक साधन के रूप में उपयोग कर विद्या के उद्देश्यों को प्राप्त करना होगा तभी हमारी अवधारणा ''सर्वेभवन्तु सुखिन:' साकार होगी।❑

(विभागाध्यक्ष-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय अम्बिकापुर, छ.ग.)

भारतीय संदर्भ और बाल विकास

❑ डॉ. सुमन बाला

बचपन के अनुभवों को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं, उदाहरण के लिए, परिवार में सदस्यों की संख्या, परिवार तथा समुदाय के रीति-रिवाज, परम्पराएँ, समाज के नैतिक मूल्य और विश्वास, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, आवास क्षेत्र आदि। हम जिस प्रकार के परिवार एवं समाज में रहते हैं, हमारा बचपन और विकास उससे प्रभावित होता है। बालक का परिवार सभी सामाजिक संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक है। पारिवारिक संस्था के बिना कोई मानव समाज नहीं होता।

हम सभी ने अपने जीवनकाल में अनेक बच्चों को शिशु से बड़ा होते हुए देखा है और साथ ही हमने उनमें होने वाले परिवर्तनों को भी देखा है। जीवन की प्रथम अवस्था से लेकर अंतिम अवस्था तक हममें शारीरिक, सांवेगिक, नैतिक, सामाजिक, मानसिक आदि विभिन्न विकास होते रहते हैं। हम इन विकास की अवस्थाओं को अपने परिवेश में पाये जाने वाले बालकों में विशेष रूप से देख सकते हैं और विकास की विशेषताओं एवं होने वाले परिवर्तनों की विविधताओं को समझ सकते हैं। इन परिवर्तनों की प्रकृति इतनी जटिल होती है कि इनको पृथकता से समझना काफी कठिन है। इन परिवर्तनों को समझने से पूर्व हम अपने बचपन के विषय में सोचें तो पायेंगे कि हमारा बचपन स्वतंत्र और उल्लासपूर्ण था। छोटी-छोटी घटनाएँ, वस्तुएँ और क्रियाकलाप हमें कितना आनन्द प्रदान करते थे। बचपन की अनुभूतियाँ जिसमें रिमझिम बारिश में भीगना और पानी के गड्ढ़ों में कूदकर पानी उछालना जैसी यादें हमें आज भी आनन्ददायी अनुभूति के रूप में याद है। बचपन में भरी गर्मियों में भी बाहर उन्मुक्त होकर खेलना तथा थककर चूर होकर कहीं भी गहरी नींद में सो जाना शायद हमारी सबकी यादें एक अमूल्य धरोहर के रूप में संचित हैं।

अब जरा अपने आस-पास वर्तमान के बच्चों के बचपन के बारे में सोचिए! क्या इन बच्चों के पास ऐसा वातावरण और पारिवारिक माहौल है जिसमें वे उन्मुक्त और स्वतंत्र होकर भयरहित अपने बचपन को जी सकें? क्या हम इन बच्चों को ऐसा बचपन दे पा रहे हैं जिसमें उनकी उत्सुकता, चंचलता, उन्मुक्तता, स्वतंत्रता को उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप मानकर स्वीकार किया जा रहा हो; शायद नहीं। उनके बचपन को आनन्ददायी बनाने में हम वयस्कों का क्या उत्तरदायित्त्व है, इसे हम सही रूप में नहीं समझ सके हैं। हममें से अधिकांश बाल मनोविज्ञान को जानने समझने का दम्भ रखते हुए इतनी छोटी सी बात नहीं समझ सके कि बचपन को आनन्ददायी बनाने और बालक के विकास के लिए सुख-सुविधाओं की आवश्यकता नहीं होती बल्कि उसे बचपन को स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार जीने की स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। यह बात हमारे बचपन के समय की अनपढ़ दादी, नानी इस बालमनोविज्ञान को बहुत अच्छे से सही रूप में जानती समझती थी। भारतीय सन्दर्भ में बालक को पाँच वर्षों तक लाड-प्यार से लालन-पालन

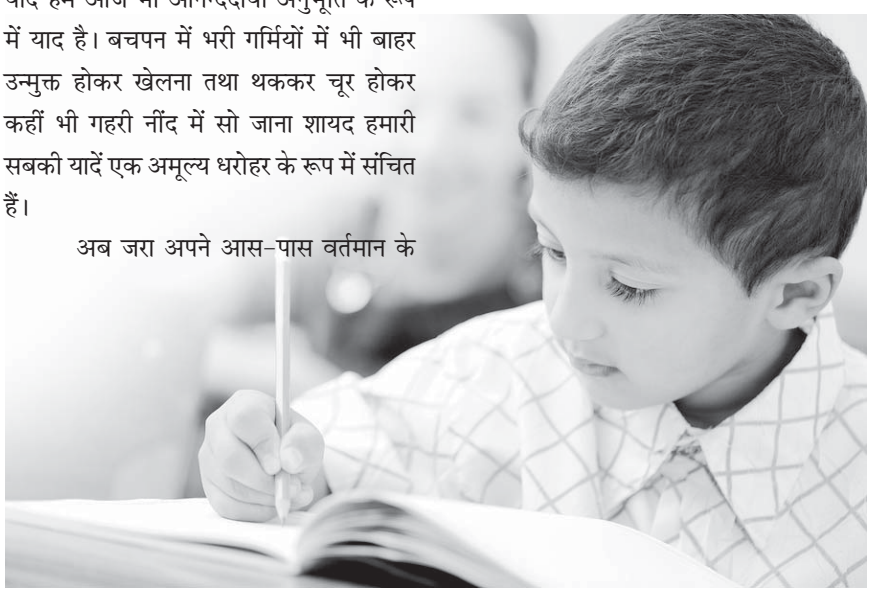

करने पर बल दिया गया है। बालक को इन वर्षों में स्वतन्त्र रहकर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को पोषित करना, उनकी उत्सुकता, कल्पनाशीलता और सर्जनात्मकता के विकास में सहायक हैं। बालक के लालन-पालन की इस प्रक्रिया से न केवल उसका बचपन आनन्ददायी अनुभूतियों और अनुभवों से परिपूर्ण होगा, बल्कि सीखने की उसकी प्रवृत्तियों को रसमय भी बना देगा। बालक के नैसर्गिक विकास के इस नियम को भारतीय जनमानस बहुत अच्छे से समझता रहा है और उसी के अनुरूप बालक का पालन-पोषण करता रहा है। अब तो पश्चिम के मनोवैज्ञानिक भी इस बात पर बल देने लगे हैं कि बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ उसके व्यक्तिगत रूप के अनुसार विकसित होती हैं जो उसके आगामी जीवन का आधार बनती है। महान लेखक और शिक्षक लियो तोलस्तोय का यह कहना सही ही है कि जन्म से लेकर पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे अपनी बुद्धि, अपनी भावनाओं, इच्छाबल और अपने चरित्र के लिए अपने चारों ओर की दुनिया से जितना कुछ ग्रहण करते हैं उतना पाँच वर्ष से लेकर अपने जीवन के अन्त तक नहीं करते।

बचपन के अनुभवों को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं, उदाहरण के लिए, परिवार में सदस्यों की संख्या, परिवार तथा समुदाय के रीति-रिवाज, परम्पराएँ, समाज के नैतिक मूल्य और विश्वास, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, आवास क्षेत्र आदि। हम जिस प्रकार के परिवार एवं समाज में रहते हैं, हमारा बचपन और विकास उससे प्रभावित होता है। बालक का परिवार सभी सामाजिक संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक है। पारिवारिक संस्था के बिना कोई मानव समाज नहीं होता। बड़े और छोटे, आदिम और सभ्य, पुरातन और आधुनिक सभी समाजों ने अपने बच्चों के पालन-पोषण की प्रक्रिया को संस्थाबद्ध किया है। भारतीय समाज में परिवार एक स्थायी और सार्वभौम संस्था है जिसका प्रभाव बालक के विकास पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की परम्परा रही है और संयुक्त परिवार में बच्चों की परवरिश का दायित्त्व केवल माता-पिता पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि बच्चों के दादा-दादी, चाचा-चाची, ताईजी-ताऊजी, नाना-नानी, बुआ, मौसी आदि पर भी निर्भर रहा है। बड़ों के व्यक्तित्व और कौशल को बालक सहज तरीके से ग्रहण करते हुए सीख लेता है। इस प्रकार भारतीय संयुक्त परिवार में बच्चों में धैर्य, सहनशीलता और आपसी सामंजस्य के साथ-साथ सहभागिता और सांवेगिक स्थिरता बेहतर तरीके से विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय संदर्भ में बालक 'बहु-बचपन' के दौर से गुजरता है। एक बालक का बचपन कई दौर से गुजरता हुआ विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन करना सीख जाता है जो उसके आगामी जीवन का आधार-स्तम्भ है। इसके अलावा बच्चे बड़ों से इतिहास सहज ही जान लेते हैं कि पुराने समय में कैसे, कब, क्या होता था। विभिन्न व्यक्तियों की आपसी चर्चाएँ, बहस और विभिन्न धारणाओं को देखने, सुनने और समझने के मौके मिलते हैं जिससे प्रेम, सहयोग एवं समन्वय की भावना का विकास होता था।

संयुक्त परिवारों में पहले जहाँ दादा-दादी, नाना-नानी, बच्चों को बहलाने के

लिए कहानियाँ सुनाते थे वही माँ बच्चों को सुलाने के लिए कोई कहानी गढ़ती थी। ये कहानियाँ व्यावहारिक मूल्य स्थापित करती थी। इसके साथ-साथ कहानियाँ बच्चों में जिज्ञासा, कल्पनाशीलता, मानवीय मूल्यों का विकास भी करती हैं और भरपूर मनोरंजन भी होता है। कहानियाँ प्राचीन काल से ही प्रत्येक सभ्यता एवं संस्कृति में मनोरंजन, शिक्षा, संस्कृति संरक्षण एवं नैतिक मूल्यों के विकास का कार्य करती रही हैं। कहानियाँ जहाँ बालकों को बड़ों के करीब लाकर आत्मीयता बढ़ाने, शब्द भण्डार में वृद्धि करने तथा सामाजिकता बढ़ाने का कार्य करती हैं वहीं आजकल के दौर में टी.वी., कम्प्यूटर, कार्टून बच्चों को अकेला कर देते हैं। आज संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। एकल परिवार में माता-पिता का सारा ध्यान व्यवसाय व अन्य कार्यों पर रहने के कारण उनको इतना समय नहीं है कि वे बालकों को प्रेरक कहानियाँ सुना सकें। बालक टी.वी. के कार्टून देखकर यान्त्रिक होता जा रहा है। ऐसे में बालक एकाकीपन का अनुभव तो करता ही है साथ ही खेल और मनोरंजन हेतु साथियों की कमी भी महसूस करता है। ऐसे बालकों में असुरक्षा की भावना तथा आत्मकेन्द्रिकता के साथ उनके समाजीकरण की प्रक्रिया भी काफी धीमी रहती हैं।

इन बदलते हुए पारिवारिक परिप्रेक्ष्यों में बालक को जल्द से जल्द औपचारिक शिक्षा के लिए विद्यालय भेज दिया जाता है। बालक के विकास में विद्यालय एवं अध्यापकों का अहम दायित्व होता है कि वे बालक की नैसर्गिक क्षमताओं को पूरी तरह से प्रस्फुटित होने के निरन्तर मौके देते रहें। आस-पास के अवलोकन और अनुभव इस कठोर सत्य से हमें रूबरू करवाते हैं कि जब तक बच्चे विद्यालय नहीं जाते उनके भीतर तीव्र उत्कंठा समाई रहती है कि कब वे विद्यालय जायेंगे परन्तु विद्यालय में प्रवेश के बाद चार-पाँच दिन के भीतर ही न जाने क्यों उनकी चाहतों का ज्वार एकदम शांत हो जाता है। चेहरे मुरझा जाते हैं, ऊर्जा शिथिल हो जाती है। अब विद्यालय उनमें रोमांच पैदा करने की जगह भय पैदा करने लगता है और वे बुझे-बुझे नजर आने लगते हैं। कुछ सीखने के स्थान पर एक बोझ उन्हें ढोते रहना जैसा लगता है। वे बालक जो विद्यालय आने से पूर्व उत्साहित रहते थे, धीरे-धीरे किसी भी तरह के रोमांच के प्रति उदासीन हो जाते हैं। आखिर उनका सीखने का रस व आनन्द कहाँ खो जाता है। विद्यालय के भीतर बालक की स्वतंत्रता व उत्सुकता पर अध्यापक पहरेदार बनकर अपना दायित्व पूरा करते हैं। कहीं कुछ अवांछनीय घटित न हो जाए, हमारी यही सोच बालक के सीखने के रस को सुखा देता है। यानुश कोचार्क के अनुसार हमें बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के सन्दर्भ में हमारी पहली समझ तो यह बननी चाहिए कि हमें बच्चों की जिज्ञासु व अन्वेषी प्रकृति का हरण किसी भी कीमत पर नहीं करना है। अन्यथा यह काम तो उनका गला घोंटने के समान होगा। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि बच्चे अपने चारों ओर के संसार को उन्हीं सजीव रंगों में अपनी नजरों से देखें। मन के तारों को झन-झनाने वाली ध्वनियों को सुनें, जो फूल-पत्तियों, पशु-पक्षियों ने उनके चारों ओर बिखेरी हैं, वे उस कोलाहल को भी सुने जो मानवीय जीवन की देन है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी बचपन को एक विकासमान पौधा माना और उनका विचार था कि बच्चों की खूबसूरती उनकी सहजता, विकास की उनकी क्षमता और खास तरह के देहाती खुलेपन में निहित होती है। वे परम्परा के बन्धनों से मुक्त होते हैं और मुख्यत: आन्तरिक इच्छा और भावनाओं से संचालित होते हैं। बचपन में बालक का विकास उसकी रुचियों तथा आवेगों के अनुसार होना चाहिए। शिक्षा प्राप्त करते समय बालक को स्वतंत्र वातावरण मिलना परम आवश्यक है।

बालक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के पोषण द्वारा ही बालक का संपूर्णता में विकास सम्भव हो सकता है। बालक के मानसिक विकास का जितना महत्त्व है उतना ही उसके शारीरिक, सांवेगिक, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों को विकसित होना आवश्यक है। ये सभी विकास भारतीय सोच के अनुसार परिवार संस्था में सहज रूप से हो जाते थे। अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इस सत्यता को स्वीकार करें कि पीढ़ियों से चली आ रही हमारी लालन-पालन की प्रक्रियाएँ बालक के मनोविज्ञान के अनुरूप उसे विकसित होने में सहायक रही हैं। वर्तमान में बालक के पालन-पोषण एवं भविष्य को एक बोझ मानकर स्वयं माता-पिता का तनाव में रहना और बालक के लिए एक अनावश्यक तनाव और भययुक्त वातावरण उत्पन्न कर देना किसी के लिए भी उचित नहीं कहा जा सकता। इसके स्थान पर बालक के बचपन की स्वाभाविक क्रियाओं का वयस्कों द्वारा स्वयं आनन्द लेते हुए बालक को लाड़-प्यार, स्नेह से सिंचित करते हुए बालक के सर्वांगीण विकास को संभव बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इससे ही बालक बड़ा होकर समाज का एक शिक्षित बालक ही नहीं अपितु एक सुसंस्कारित नागरिक बनकर समाज का विकास कर सकेगा। ❑

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

आज सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण में शिक्षा पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं क्योंकि समाज में व्याप्त न्यूनताओं एवं अतिवादी प्रवृत्तियों का संपूर्णदोष शिक्षा पर ही आता है निश्चित रूप से शिक्षा ही समाज को संस्कारित एवं परिष्कृत करती हुयी उन्नत बनाती है पर हमें उसके वास्तविक उद्देश्यों पर ध्यान देते हुये शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना होगा। आज हम शिक्षा के द्वारा केवल भोग को ही साध्य बना रहे हैं अधिक से अधिक सुख-सुविधाओं युक्त जीवन जीने हेतु प्रभूत धन की आवश्यकता है और वही हमारी शिक्षा प्रदान कर रही है।

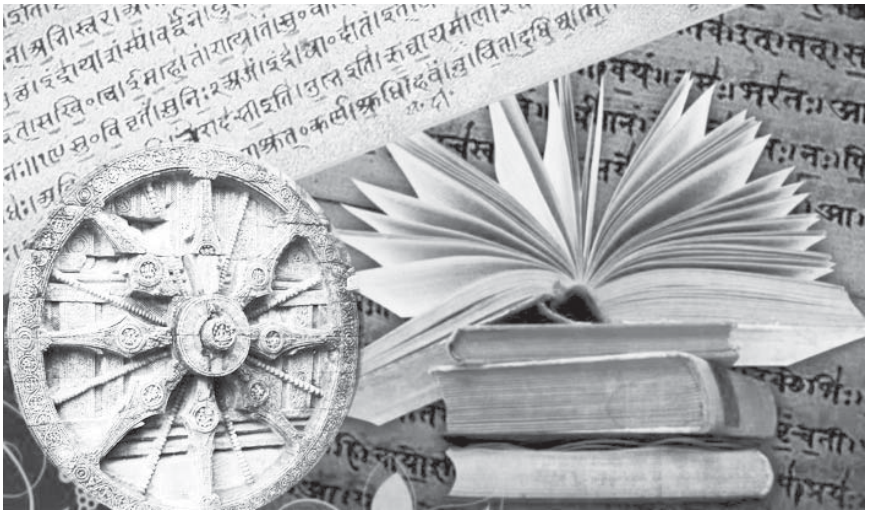

विद्या अमरता की साधिका

❑ डॉ. ओमप्रकाश पारीक

विद्या शब्द ज्ञानार्थक 'विद्' धातु में 'क्यप्' प्रत्यय लगने पर बना है जिसका अर्थ है जानना या ज्ञान प्राप्त करना।

'विधेति ग्रह्यतेऽनयाऽर्थ इति विद्या'

वस्तुत: जानने की प्रक्रिया बालक के जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है। सम्पूर्ण जीवन कर्तव्य और अकर्तव्य (क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये) दो पक्षों के सामञ्जस्य स्थापित करने में ही व्यतीत होता है। इस सामञ्जस्य के दिग्दर्शक हमारे शास्त्र हैं जो मानव जीवन के शाश्वत उद्देश्यों के आधार पर प्रणीत हैं -

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।

अर्थात् क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसके विषय में शास्त्र को ही प्रमाण मानना चाहिये। अत: शास्त्र विद्या के ही अंग हैं या हेतु हैं जिनसे मनुष्य निरन्तर विद्यार्जन करता हुआ अपने जीवन को सार्थक करता है। शास्त्रों में अट्ठारह प्रकार की विद्याएँ स्वीकृत की हैं -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्याय विस्तर:।
धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्याह्येताश्चतुर्दश:

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद (चारों वेद), शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द जयोतिष (छह वेदाङ्ग), न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण और मीमांसा ये चौदह विद्याएँ हैं। इनमें यदि आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अर्थशास्त्र को सम्मिलित करते हैं तो विद्याएँ अट्ठारह होती हैं।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेतित्रय:।
अर्थशास्त्रं चतुर्थञ्च विद्या ह्यष्टादशैव ता।।

वस्तुत: शास्त्र कार्याकार्य का ज्ञान देते हैं और विद्या शास्त्र स्वरूपा ही है अत: विद्या की सार्थकता शास्त्रानुकूल व्यवहार से प्रकट होती है अन्यथा **'ज्ञानं भारं क्रियाविहीनं'** अर्थात् क्रिया (आचरण) के अभाव में ज्ञान भारस्वरूप ही है। सर्वदा सत्य बोलना चाहिये यह शास्त्र प्रणीत है, परन्तु क्या वह सत्य रचनात्मक है या विध्वंसात्मक शिव है या अशिव, सुन्दर है या असुन्दर इस बात की परीक्षा कर उपयुक्त दृष्टि भी विद्या ही प्रदान करती है।

मनुष्य मरण धर्मा है, जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है तथा जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म भी अनिवार्यत: है। इस प्रकार के शाश्वत् सत्य तत्त्व को जानकर इस मनुष्य देह को क्षणभंगुर समझकर परमात्म तत्त्व को ही सत्य और अविनाशी जानना तथा तद्नुरूप ही अपना जीवन व्यवहार करना यह सार्थक कर्तव्य है जो विद्या प्राप्ति से ही संभव होता है। विद्या के अनुरूप कर्म करने से व्यक्ति संसार सागर से तो तर ही

जाता है अन्ततः परम तत्त्व का साक्षात्कार कर मोक्ष भी प्राप्त करता है। यह आत्मा प्रतिक्षण कुछ ना कुछ जानती रहती है तथा कुछ ना कुछ करती है अर्थात् जानने की जिज्ञासा और कर्म निरन्तर चलते हैं जो न जानती है और न करती है वह आत्मा नहीं है –

प्रतिक्षणं करोत्यात्मा जानात्यात्मा प्रतिक्षणं।
न करोति न जानाति यः स नात्मोपद्यते।।

(गीता विज्ञान भाष्य 2/2)

इस प्रकार ज्ञान और कर्म निरन्तर चलते रहते हैं, किन्तु आवश्यकता कर्म के साथ ज्ञान के समन्वय की है जहाँ उचित ज्ञान कर्म के साथ संयुक्त होकर श्रेष्ठ मार्ग की ओर ले जाता है, वहीं सही ज्ञान के बिना किये गये कर्म अधोगति की ओर ले जाते हैं। गीता में इस प्रकार के कर्म जो कि हमें अद्योगति की ओर ले जाते हैं। उन्हें मनुष्य तथा समाज के लिये त्याज्य माना है तथा ऐसे कर्मों से बचने के लिये बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण करने की बात कही है।

बुद्धियोग के समावेश से व्यक्ति में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य चार प्रकार की विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं अतः ऐसा व्यक्ति अविद्या, अस्मिता–राग, द्वेष अभिनिवेश पञ्च क्लेशों से दूर हो जाता है। ईशोपनिषद् में ज्ञान और कर्म को विद्या और अविद्या के नाम से भी कहा है और इनके उचित समन्वय की बात उपदिष्ट की है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति योऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो योऽविद्यायां रताः।।

अर्थात् वे लोग भयंकर अंधकार में प्रवेश करते हैं जो केवल अविद्या (ज्ञान से विहीनकर्म) का आश्रय लेते हैं और उससे भी अधिक वे व्यक्ति अधिक अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं जो केवल ज्ञान (बिना कर्म के विद्या) में डूबे रहते हैं। इसलिये विद्या के बिना कर्म व्यर्थ है, तथा कर्मों के बिना विद्या व्यर्थ है। अतः ज्ञान और कर्म दोनों को समझकर कर्तव्य कर्मों के आचरण से व्यक्ति मृत्यु के पार चला जाता है। तथा ज्ञान के प्रभाव से अमर हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। ईशोपनिषद् में कहा है –

विद्याञ्च अविद्याञ्च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविधया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

ईशोपनिषद/11

शिक्ष्यते विद्योपादीपतेऽनया इति शिक्षा इस प्रकार पाणिनि ने विद्या के उपादान के रूप में शिक्षा को माना है। अर्थात् विद्या या ज्ञान प्राप्त करने का साधन शिक्षा है, जिससे अज्ञान की निवृत्ति होती है और जीवन साफल्य अर्थात् जीवन में सार्थकता आती है। दार्शनिकों ने इस सफलता को आधि–भौतिक आधि दैविक और आध्यात्मिक दुःखों की निवृत्ति माना है। इसका मार्ग है धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्ट्य को क्रमशः अपनाते हुये परम–तत्त्व का साक्षात्कार कर मुक्ति प्राप्त करना इसलिये हमारे यहाँ विद्या का उद्देश्य **'सा विद्या या विमुक्तये'** निर्धारित किया गया। अर्थात् शैशवावस्था से ही जानने की प्रवृत्ति चलती है उसमें बालक अपने माता–पिता–गुरु, बाह्य एवं आन्तरिक पर्यावरण से जानता व सीखता रहता है। पर्यावरण एवं परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करता हुआ आधिभौतिक आधि दैविक व आध्यात्मिक उलझनों को दूर करता है अतः सीखने की प्रक्रिया व्यक्ति को निरन्तर विद्यावान् बनाती चली जाती है। इसी रूप में शिक्षा विद्या का उपादान है जिसका उद्देश्य भी 'विमुक्तये' है। वस्तुतः हमारी आत्मा का नैसर्गिक स्वरूप है स्वतंत्र रहना, प्रकाशित रहना तथा आनन्दमय रहना किन्तु माया के प्रभाव से अज्ञानवश उस आत्मा में कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विवेक समाप्त हो जाता है जिससे आत्मा की स्वतंत्रता, प्रकाशकता और आनन्दमयता अज्ञान से ढक जाती है फलतः आधिभौतिक, आधि–दैविक–आध्यात्मिक क्लेश प्राप्त होते हैं। शिक्षा और विद्या इन क्लेशों से मुक्ति प्रदान कर आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप अमरता की ओर ले जाती है।

आज सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण में शिक्षा पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं क्योंकि समाज में व्याप्त न्यूनताओं एवं अतिवादी प्रवृत्तियों का संपूर्णदोष शिक्षा पर ही आता है निश्चित रूप से शिक्षा ही समाज को संस्कारित एवं परिष्कृत करती हुयी उन्नत बनाती है पर हमें उसके वास्तविक उद्देश्यों पर ध्यान देते हुये शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना होगा। आज हम शिक्षा के द्वारा केवल भोग को ही साध्य बना रहे हैं, अधिक से अधिक सुख–सुविधायुक्त जीवन जीने हेतु प्रभूत धन की आवश्यकता है और वही हमारी शिक्षा प्रदान कर रही है।

इस प्रकार के उच्छृंखल भोग से समाज में जो अत्याचार, अनाचार, अपराध एवं आतङ्क प्रचलित हो गया है उसका दोषारोपण शिक्षा पर होता है। अतः हमें भोग के साथ त्याग, भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता, स्वार्थ के साथ परमार्थ का सामञ्जस्य निर्माण भी शिक्षा के द्वारा करना होगा, शिक्षा के मूल उद्देश्यों– **सा विद्या या विमुक्तये, विद्ययाऽमृतमश्नुते** के बिना केवल भौतिक उद्देश्यों के लिये दी गयी शिक्षा में केवल खोखला शिक्षा शब्द ही रहेगा उसकी सारगर्भिता तथा सार्थकता का अभाव होगा। अतः हमारे शिक्षा संस्थानों द्वारा विद्या एवं शिक्षा के सार्थक उद्देश्यों के अनुरूप पद्धति निर्माण कर शिक्षा प्रदान करनी चाहिये। सार्थक उद्देश्यों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था अवश्य ही **'विद्ययाऽमृतमश्नुते'** उपनिषद् वाक्य को सार्थक सिद्ध करती है। ❑

(सह–आचार्य, संस्कृत विभाग, राज. बा.ना. स्नातकोत्तर महा.चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर)

विद्या का स्थान कल व आज

❑ डॉ. इन्दुबाला अग्रवाल

वैदिक काल में जीवन के सुचारु संचालन हेतु समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया व हरेक वर्ण का कार्य क्षेत्र सुनिश्चित किया गया। वर्णों का विभाजन जन्म के आधार पर न करके कर्म के आधार पर किया जाता था, प्रत्येक वर्ण का दायरा सीमित था और उसी दायरे में रहकर उसे व्यवसाय व शिक्षा से जोड़ा जाता था। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चार पुरुषार्थ स्थापित किये गए थे। इनकी प्राप्ति हेतु चार आश्रम यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम बनाये गये थे। आवश्यकताएँ सीमित थी व जीवन सरल व सादगी-पूर्ण था।

वैदिक काल में जीवन के सुचारू संचालन हेतु समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया व हरेक वर्ण का कार्य क्षेत्र सुनिश्चित किया गया। वर्णों का विभाजन जन्म के आधार पर न करके कर्म के आधार पर किया जाता था, प्रत्येक वर्ण का दायरा सीमित था और उसी दायरे में रहकर उसे व्यवसाय व शिक्षा से जोड़ा जाता था। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चार पुरुषार्थ स्थापित किये गए थे। इनकी प्राप्ति हेतु चार आश्रम यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम बनाये गये थे। आवश्यकताएँ सीमित थी व जीवन सरल व सादगी-पूर्ण था। पर्यावरण व परिवेश की जानकारी सीमित थी परन्तु विद्या प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति जीवन का परम लक्ष्य था। विद्वानों को समाज परम आदर व सम्मान की दृष्टि से देखता था। वेदों में शिक्षा या विद्या प्राप्ति पर बहुत अधिक बल दिया गया था और विद्या के द्वारा समस्त सुखों की प्राप्ति संभव बताई गयी थी। शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुल व आश्रमों में होती थी। हर विद्यार्थी को उसके वर्ण-अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती थी जो उसके भविष्य में काम आ सके व उसके तथा उसके परिवार के जीवन निर्वाह के साथ-साथ विद्यार्थी को किसी विशेष क्षेत्र में निपुणता तथा धैर्य, विवेक, संयम के साथ बुद्धि का उपयोग करना सिखाया जाता था। विद्या प्राप्ति या शिक्षा प्राप्ति समान अर्थों में देखे जाते थे तथा शिक्षा देने के विषयों में गणित, व्याकरण, खगोल विद्या, ज्यामिति, शल्यचिकित्सा, रसायनशास्त्र, काव्य, संगीत, युद्धकौशल, वेदों, पुराणों व उपनिषदों का अध्ययन व अध्यापन शामिल था। जीवन में उपयोगी होने के कारण विद्या अध्ययन सम्मानीय था। विद्या मात्र धन कमाने का साधन नहीं थी वरन् धन की प्राप्ति विद्या प्राप्ति के साथ स्वयमेव हो जाती थी।

जैसा श्लोक से विदित है -

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति, धनात् धर्मः ततः सुखम्॥

अर्थात् - विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन आता है, धन से धर्म होता है, और धर्म से सुख प्राप्त होता है।

विद्या प्राप्ति का महत्त्व तप, दान व शील के समान था बिना विद्या के प्राणी को पशु के समान मना जाता था जैसा की श्लोक में सही कहा गया है-

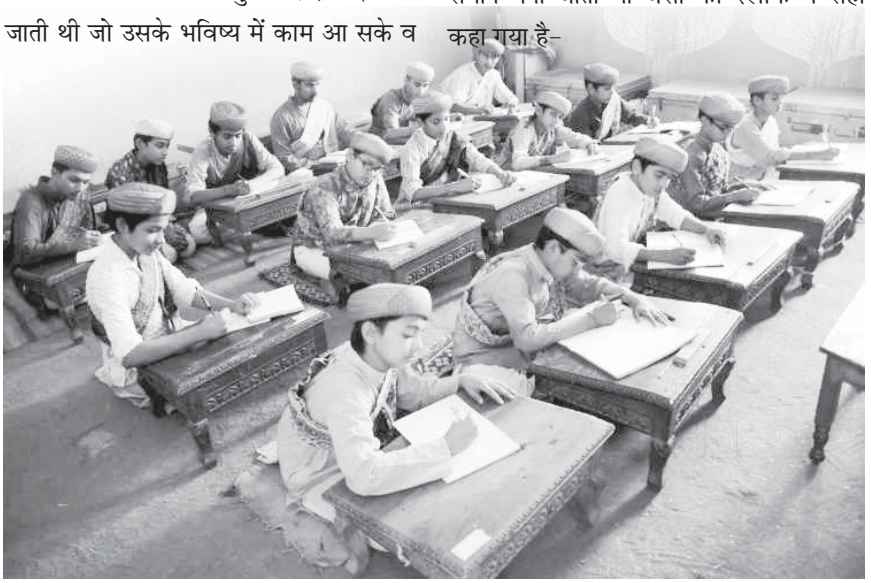

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

अर्थात् – जिन लोगों के पास न तो विद्या है, न तप, न दान, न शील, न गुण और न धर्म, वे लोग इस पृथ्वी पर भार हैं और मनुष्य के रूप में जानवर की तरह से घूमते रहते हैं।

विद्या प्राप्त व्यक्ति का सम्मान देश में ही नहीं विदेशों में भी किया जाता था तथा संकट के समय विद्या मित्र के समान साथ देती है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नंगुप्तं धनम् विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः। विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥

अर्थात् – विद्या इन्सान का विशिष्ट रूप है, गुप्त धन है। वह भोग देनेवाली, यशदात्री, और सुखकारक है। विद्या गुरुओं का गुरु है, विदेश में वह इन्सान की बंधु है। विद्या बड़ी देवी है; राजाओं में विद्या की पूजा होती है, धन की नहीं। इसलिए विद्याविहीन पशु ही है।

विद्या प्राप्ति हेतु विद्यार्थी का जीवन संयमित व नियमित होना चाहिए व एक क्षण गँवाए बिना विद्या अर्जन करना चाहिए जैसा की श्लोक में लिखा है।

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।
क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम्॥

भावार्थ– एक एक क्षण गँवाये बिना विद्या पानी चाहिए; और एक एक कण बचा करके धन इक्ट्ठा करना चाहिए। क्षण गँवाने वाले को विद्या कहाँ, और कण को क्षुद्र समझने वाले को धन कहाँ ?

इस प्रकार प्राचीन समय में विद्या को काफी महत्त्वपूर्ण समझा जाता था समस्त द्रव्यों में विद्या का महत्त्वपूर्ण स्थान था जैसा कि श्लोक में विदित है

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्ध्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

अर्थात् – सब द्रव्यों में विद्यारूपी द्रव्य सर्वोत्तम है, क्योंकि वह किसी से हारा नहीं जा सकता; उसका मूल्य नहीं हो सकता, और उसका कभी नाश नहीं होता ।

मानव सभ्यता के विस्तार के साथ-साथ पृथ्वी पर जनसंख्या में वृद्धि व पर्यावरणीय ज्ञान में वृद्धि होती गयी। विद्या का स्थान शिक्षा व समाज में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था ने ले लिया जिसने बालकों पर अनावश्यक रूप से भार बढ़ाया है। प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को परिचयात्मक रूप में पृथ्वी व उसके समस्त वातावरण, ग्रहों-उपग्रहों व विभिन्न देशों की जानकारी उपलब्ध करवाई जाती है जिनको बच्चे मात्र परीक्षा पास करने हेतु रटन्त स्मृति में धारण कर लेते हैं तथा बाद में यह ज्ञान विस्मृत हो जाता है। अब ज्ञान प्राप्ति का स्थान डिग्रियों व उपाधियों ने ले लिया है बच्चे येन केन प्रकारेण डिग्रियाँ एकत्र करना चाहते हैं जिनके बल पर नौकरियाँ प्राप्त की जा सके। परन्तु ये डिग्रियाँ कागजी रद्दी से अधिक महत्त्व नहीं रखती। अर्थ के बिना सब व्यर्थ है, ऐसी समाज की धारणा बन गयी है। अर्थ के प्रति जागरूक समाज की नजरों में वे ही लोग प्रतिष्ठा के हकदार हैं जो बेतहाशा दौलत कमा रहे हैं तथा वास्तविक अर्थों में विद्या प्राप्ति समाज का लक्ष्य नहीं रहा है ऐसी सोच आज की युवा पीढ़ी की बनती जा रही है।

परन्तु यह मात्र भ्रमजाल है आज भी विद्या प्राप्ति उतनी ही सुख प्रदायिनी है, परन्तु आवश्यकता शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की है। डिग्रियों के स्थान पर ज्ञान पिपासु व जिज्ञासु बालकों को ही जो बुद्धि रूपी सामर्थ्य रखते हों उन्हें ही आगे विद्याध्ययन करने हेतु अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।

पैसे व सौन्दर्य का स्थान या किसी प्रकार के आरक्षण का स्थान विद्या प्राप्ति में नहीं आना चाहिए।

रूपयौवनसंपन्ना विशाल कुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥

अर्थात् – रूपसंपन्न, यौवनसंपन्न, और चाहे विशाल कुल में पैदा क्यों न हुए हों, पर जो विद्याहीन हों, तो वे सुगंध रहित केसुडे के फूल की भाँति शोभा नहीं देते। ❑

(पूर्व तदर्थ व्याख्याता, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर)

डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं कि- ''हम भारतीय यदि अपने अस्तित्त्व और स्वरूप को कायम रखना चाहते हैं तो हमारे लिए उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक है। हमारे अतीत में बहुत कुछ ऐसा है जो जीवनदायिनी और ऊपर उठाने वाला है। अतीत को यदि प्रेरणादायी बनाना है तो हमें इसका विवेकपूर्ण एवं समग्रता से अध्ययन करना होगा। उपनिषदों में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में शिक्षा दी गई है। आचार्य श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देते हैं। पिता -पुत्र को, माता-पुत्र को संस्कार प्रदान करते हैं। प्रत्येक शास्त्र जिज्ञासा से प्रारंभ होता है, प्रश्नोत्तर पद्धति से विस्तार पाता है और समाधान तक पहुँचता है।

उपनिषदों में निहित है मानव निर्माण की शिक्षा

❑ **बजरंग प्रसाद मजेजी**

उपनिषद् ज्ञान की आवश्यकता न केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए (आध्यात्मिक उन्नति), अपितु दैनिक जीवन के लिए भी उपयोगी हैं। उपनिषद में ऐसी शक्ति है जो सम्पूर्ण विश्व को बल, शौर्य एवं नवजीवन प्रदान करता है। इसमें किसी भी जाति, वर्ग, मत, सम्प्रदाय का भेद किये बिना प्रत्येक दीन-दुर्बल, दुखी, दलित प्राणी को सम्बल दिया है। उपनिषद् वह शक्ति प्रदान करता है, जिसके द्वारा मनुष्य जीवन संग्राम को धैर्य तथा साहस के साथ मुकाबला करता है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक, दोनों में उपनिषद् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद्-ज्ञान का अथाह भण्डार हैं।

स्वामी विवेकानन्द

भारत का समस्त प्राचीन ज्ञान वेद, पुराण उपनिषद् में दिया हुआ है, जिसे समझना आवश्यक है। इनमें जो लिखा है वह मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक कब क्या करना चाहिए। क्या नहीं करना चाहिए। दिनभर के क्रिया- कलापों के लिए मार्गदर्शन है। भारत की संस्कृति को अक्षुण्ण रखने वाले शास्त्रों में उपनिषद् का विशेष महत्त्व है। उपनिषदों में देव-दानव, अमीर, गरीब, सामाजिक समरसता के कई उपाख्यानों द्वारा समाज को नई प्रेरणा दी है। जिन्हें वर्तमान में कथावाचक, उपदेशक कथाओं के माध्यम से नई दिशा दे रहे हैं। उपनिषदों की भाषा और भाव सरल हैं। कथानक, प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ, शंका समाधान के द्वारा समाज को शिक्षित करने, रूढ़िवादिता, परम्पराओं से हटकर, वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप विवेकपूर्ण कार्य पद्धति अपनाने की राह दिखाते हैं। उपनिषद् कहते हैं कि मत कहो हम दुर्बल हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नहीं कर सकते। उपनिषदों के द्वारा भारतीय संस्कृति और इतिहास को समझा जा सकता है। इनमें वर्णित कहानियाँ हैं, जो शान्ति का संदेश देती हैं। तथा सदाचार और नैतिक गुणों के विकास पर जोर देती हैं। ये कथाएँ मात्र मनोरंजन करनेवाली कहानियाँ नहीं हैं, अपितु ये जीवन-दर्शन का ज्ञान कराती हैं। अच्छे -बुरे का विवेक देती हैं। जीवन की अनेक विकट परिस्थितियों में जब हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं तब ये हमारा मार्गदर्शन करती हैं। उपनिषद् कहते हैं कि-

''हे मानव तेजस्वी बनो। वीर्यवान बनो। दुर्बलता को त्यागो। निर्भय बनो।'' डा. राधाकृष्णन कहते हैं कि- ''हम भारतीय यदि अपने अस्तित्त्व और स्वरूप को कायम रखना चाहते हैं तो हमारे लिए उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक है। हमारे अतीत में बहुत कुछ ऐसा है जो जीवनदायिनी और ऊपर उठाने वाला है। अतीत को यदि प्रेरणादायी बनाना है तो हमें इसका विवेकपूर्ण एवं समग्रता से अध्ययन करना होगा। उपनिषदों में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में शिक्षा दी गई है। आचार्य श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देते हैं। पिता-पुत्र को, माता-पुत्र को संस्कार प्रदान करते हैं। प्रत्येक शास्त्र जिज्ञासा से प्रारंभ होता है, प्रश्नोत्तर पद्धति से विस्तार पाता है और समाधान तक पहुँचता है। भारत में ''प्रश्नोपनिषद्'' ज्ञान-विज्ञान सिखाने की उत्तम विधि है। शिक्षण पद्धति का तत्त्व यही है कि विद्यार्थी जिज्ञासु बने, उसके मन में प्रश्न आये, शिक्षक से समाधान मिले, मार्गदर्शन मिले। तैत्तरीयोपनिषद् में कहा गया है कि -

ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च।
सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च।
अतिथियश्च स्वाध्याय प्रवचने च।
मानुषं च स्वाध्याय प्रवचने च।

उपनिषद् का अर्थ भी निकट बैठना है। शिष्य गुरु से विद्या सीखने के लिए गुरुकुलों में, जो कि जंगल में स्थित होते थे, शान्त वातावरण में स्थापित आश्रमों में गुरु के सान्निध्य में जीवनोपयोगी सभी विद्याओं की शिक्षा ग्रहण करते थे। उपनिषद् एक अर्थ 'रहस्य' भी बताया गया है। इसलिए कहा जाता है कि उपनिषदों की भाषा सरल, परन्तु प्रत्येक कथन और सारांश तलवार की धार के समान है। हथौड़े की चोट के समान हृदय पर प्रभाव करती है। उनके अर्थ समझने पर कुछ भी भूल होने की संभावना नहीं रहती है। प्राय: उपनिषदों की संख्या 11 बताई जाती है, जो इस प्रकार है।

(1) ईशावास्योपनिषद्
(2) केनोपनिषद्
(3) कठोपनिषद्
(4)प्रश्नोपनिषद्
(5) मुण्डकोपनिषद्
(6) ऐतरेयोपनिषद
(7) माण्डूक्योपनिषद्
(8)श्वेताश्वतरोपनिषद्
(9) तैत्तरीयोपनिषद्
(10)छान्दोग्य उपनिषद्
(11)बृहदारण्यकोपनिषद्

इन उपनिषदों में ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, मिथ्याभिमान न करने, भारत का वेदान्त उद्घोष'' उतिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधयत (कठोपनिषद्), सत्यमेव जयते, कर्त्तव्य कर्म के साथ स्वाध्याय करने की शिक्षा, विद्याददाति विनयम्' जैसे वेद वाक्यों के द्वारा सदाचार का पालन, सत्यभाषण, इन्द्रियों को वश में रखना, सभी के साथ सद्व्यवहार, चरित्रवान बनने, माता-पिता, आचार्य का सम्मान करने जैसी शिक्षाएँ नचिकेता-यमराज संवाद, महर्षि पिप्लाद ऋषि पुत्र संवाद, शौनक ऋषि-अंगरा संवाद, महर्षि भृगु को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति, सत्यकाम गौतम ऋषि से शिक्षा प्राप्त करना, याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी, गार्गी संवाद, जनक संवाद अष्टावक्र और आचार्य बंदी के मध्य शास्त्रार्थ जैसे अनेक उपाख्यानों के द्वारा दी गई है जो हमारी आज की मानव निर्माण में शैक्षिक विद्याओं के रूप में स्वीकारी जाकर पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जानी चाहिए। राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने स्वीकारा है कि-

फैला यहीं से ज्ञान का
आलोक सब संसार में,
जागी यहीं थी, जग रही
जो ज्योति अब संसार में,
इञ्जील और कुरान
आदिक थे न इस संसार में,
हमको मिला था दिव्य
वैदिक बोध जब संसार में।

(स्वतंत्र लेखक)

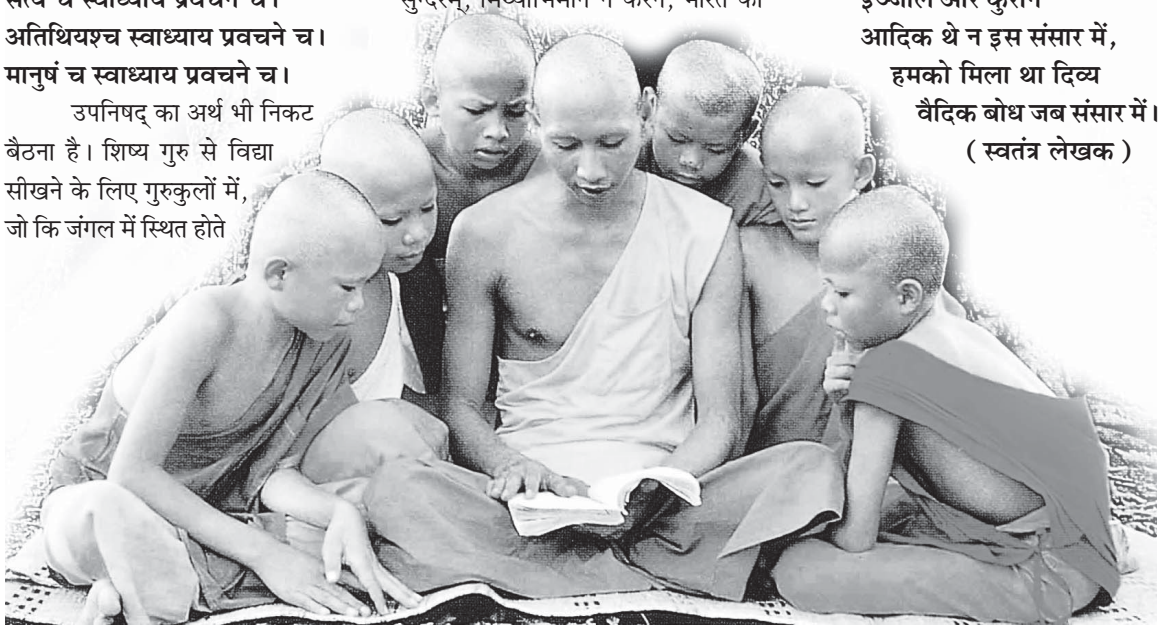

We are now faced with some academics in some places strongly discussing things of negative nature, creating attitudes of negative, destructive perceptions, critical attitudes to everything and so on. Respect is hardly nurtured; Tyaga, one of the cardinal attributes to Bharatiya Sanskriti is hardly initiated, the epistemology of co-existence, which is the very base of Bharatiya Sanskriti is totally unacknowledged. The concept of being progressive here becomes total no-conformism to all not modern; post modernism is undoing all of the old. Here, Nation, Nationalism, National Sanskriti etc. gets thrown to the dust bin.

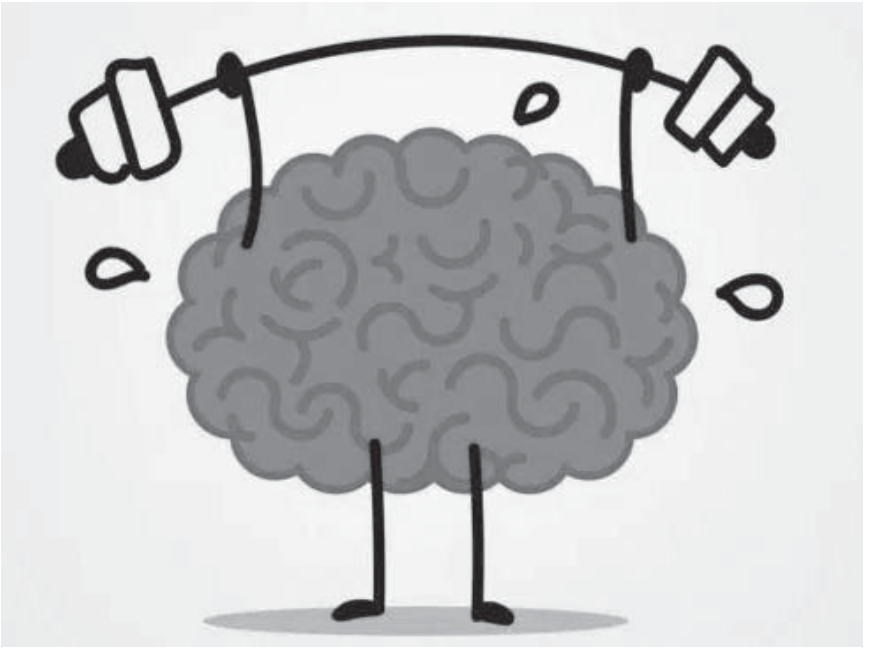

Vidyay Amrutam Asnute

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Vidyayamrutamasnute is the eleventh mantra from Isavasyo-panishad. The full mantra is:

Ca Vidyam Ca Ya
Tad VedobhayamSaha
AvidyaMrityumTirtva
VidyayaAmritamashnute

The spirit of this mantra suggests that education eventually renders one immortal, to create an implication of the importance of bringing knowledge through education. One important point here which calls for immediate attention is the second line, "VedobhayamSaha". This say Ubhayam, meaning both, to suggest that one should know both Vidya and Avidya. Knowledgeable person is the one who knows what knowledge is as well as what is unknowledge together. This is right, it is impossible to comprehend what night is when one does not know what day is. In such a situations, the so-called knowledge is bound to be vitiated, one sided, and essentially partial.

The Nyayasutra

Nyayasutra is a text from the third century BC, written by Maharishi Akshapada Gautama. This text has brought out near forty plus Bhashyas which are at times more instructive than the text itself. There are many great commentators to this, like Maharishi Vatsyayana, Vacaspati Mishra, Udayanacharya and so on. Nyayasutra discusses epistemology, about knowledge, sources of knowledge, forms of knowledge, unknowledge and so on. One important extract of this text is that, 'knowledge whatever must have the property of affectivity'. Knowledge must be affecting the knower, or, it is unworthy of the attribute knowledge.

Knowledge affecting the knower should be a process of refining.

Knowledge should refine the knower, through a process of 'sputikarana'. Eventually, it shall be this refinement that creates Sanskriti, Sanskaris, and civilisation.

Knowledge as seen today

Present times do not discuss core issues like what may be called knowledge as ancient Bharatiyas did deftly. It is not only the case that present people don't discuss them, but it is also the unfortunate case that present people don't know the discussions carried out by our ancestors, they call them as obsolescent and in utter unknowledge don't try to know them.

Perhaps there are still colonial hegemony among us, perhaps there are still people who think that what is done elsewhere is much better, and most importantly, there are hardly any people who are honest in saying that "I don't understand this". One is rather afraid that should one say that I don't understand, it may be interpreted as one's incompetency as well as inefficiency to be updated with the happenings around, and elsewhere.

This is one typical attitude found among the academic community, both teachers and students. This fear is perhaps from the subaltern mentality from the colonial mentality: and the end result is that one subserviently lauds whatever from Europe. This coupled with our lack of enthusiasm in Bharatiya knowledge tradition, added with the non-availability of Bharatiya knowledge tradition in an adequate manner added with the materialistic interpretation that Bharatiya knowledge tradition that suffers from obsolescence creates this typical situation in education sector, which is now suffocating our society.

Miserable academics

We are now faced with some academics in some places strongly discussing things of negative nature, creating attitudes of negative, destructive perceptions, critical attitude to everything and so on. Respect is hardly nurtured; Tyaga, one of the cardinal attribute to Bharatiya Sanskriti is hardly initiated, the epistemology of co-existence, which is the very base of Bharatiya Sanskriti is totally un acknowledged. The concept of being progressive here becomes total no-conformism to all not modern; post modernism is undoing all of the old. Here, Nation, Nationalism, National Sanskriti etc. gets thrown to the dust bin.

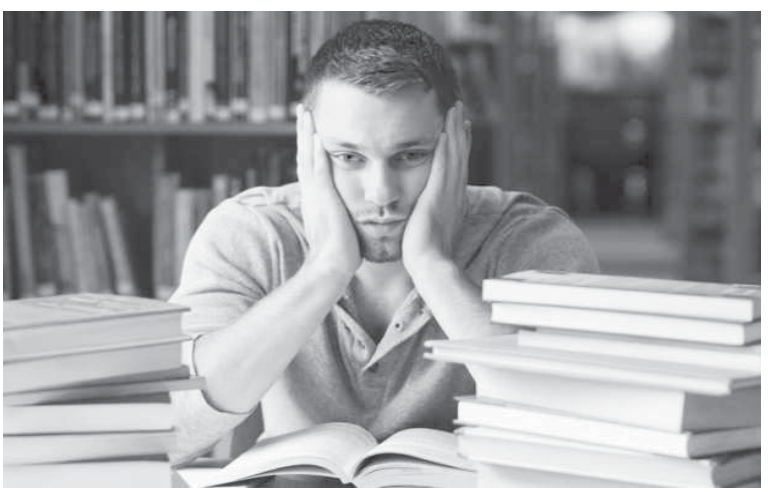

To counter these, it definitely shall take time and huge efforts from well-meaning sons of this Nation. This shall at once create a binary between Nationalists and non or anti-Nationalists, but this is beyond redemption at this stage of a new beginning, and we can't help it. We can legitimately aspire towards a cleansing, we have examples from the history of our Sanskriti to this effect. Let us remember Adi Shankaracharya, who single handily restored both the authority and glory of the Vedopanishadic knowledge tradition, let us remember Chhatrapati Shivaji Maharaj who initiated another kind of cleansing to make the Hindus stand boldly against brutal hegemony of alien invaders which started a series of other appropriate sons of this Nation take up the challenge after him and let us also remember Sardar Patel who made the present unification of Bharat against all kinds of antagonisms, ironically from within.

Let me conclude with one note, we really need strong Nationalism and stronger Nationalists to accomplish this time demanding task.❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

उच्च शिक्षा में अनुशासन

❑ डॉ. रेखा यादव

शैक्षिक क्षेत्र सर्वाधिक प्रयोगों का क्षेत्र रहा है परन्तु प्रयोग करने वाले भूल जाते हैं कि आज जो हम बो रहे हैं इसकी फसल तुरन्त नहीं आ सकती और आज जो समस्याएँ हैं उसका कारण मात्र शिक्षा का स्वरूप नहीं, समाज के बदलते हुए मूल्य भी है जिनकी परीक्षा शिक्षकों को करनी होगी। यदि ये अवांछनीय है तो स्वयं के आचरण में दर्शाने का साहस शिक्षकों को करना होगा। उच्च शिक्षा में मूल्यों के प्रवेश और अनुशासन हमारे लिये पहेली बन गए हैं क्योंकि मात्र परीक्षा के लिए इन्हें पाठ्यक्रम का हिस्सा बना देना समाधान नहीं है।

अनुशासन मानवीय जीवन का सद्गुण है जिसे नियमों के पालन की आदत के रूप में समझा जाता है। जब भी हम सामाजिक जीवन में आचरण पर विचार-विमर्श करते हैं तो नियम और मर्यादाओं की बात ही करते हैं। ये नियम और मर्यादाएँ समाज द्वारा तय की जाती हैं। अनुशासन को बहुधा स्वशासन अर्थात् अपने ऊपर शासन या नियन्त्रण के रूप में भी समझा जाता है क्योंकि नियमों के पालन की दृष्टि ही हमारी संकल्प की स्वतन्त्रता का हिस्सा है। नियमों का उल्लंघन अनैतिक या अनुचित व्यवहार कहलाता है। संकल्प की स्वतन्त्रता मनुष्य के पास नैतिक उत्तरदायित्व के प्रतिबन्ध से मर्यादित है।

अनुशासन मनुष्य के समाजीकरण एवं सांस्कृतिकरण का ही उत्पाद है परन्तु वर्तमान में प्रत्येक पंथ, समाज में मूल्यों के प्रति अनास्था को वैचारिक स्वतन्त्रता मानकर इतना स्वच्छंद व्यवहार हो रहा है कि नैतिकता क्या है? इसे समझना और समझाना दोनों ही जटिल पहेली बन गये हैं। समाज की बौद्धिक प्रगति वांछनीय है क्योंकि इससे परम्परा रूढ़िमुक्त होती है परन्तु बुद्धि का प्रयोग आज जानने-समझने-विश्लेषण करने से ज्यादा कुतर्क के रूप में हो रहा है। भारतीय न्यायशास्त्र की परम्परा में वाद, वितण्डा एवं छल को तत्त्वविद्या का साधन नहीं माना गया है अपितु शास्त्रार्थ में अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने तथा अपनी परम्परा की और गहन परीक्षा एवं साधना हेतु अवकाश प्राप्त करने का साधन माना गया है। जैसाकि हम इतिहास के विविध कालों में पाते हैं कि मानवीय स्वार्थ और कुत्सित प्रवृतियों ने वाद, जल्प, वितण्डा और छल को ही अपना मुख्य साधन मान लिया और जिज्ञासा तथा साधना को पूर्ण अवकाश दे दिया। आज की स्थिति भी कोई सकारात्मक नहीं है।

शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य पेट भरना हो गया है। पेट भरने का प्रबन्ध होते ही शिक्षा से निवृत्ति आज के युवाओं की मुख्य समस्या है। इस समस्या को समस्या समझने एवं समाधान ढूँढने की पहल शैक्षिक समाज को ही करनी होगी क्योंकि यह हमारे सामाजिक जीवन के मरण का प्रश्न है। ज्ञान स्वयं में साध्य है किसी अन्य हेतु से नहीं। राजनैतिक द्वेष-विद्वेष से तो श्रम, रोजगार, चरित्र की उत्कृष्टता, बौद्धिक कौशल जैसे मानवीय सरोकारों का लक्ष्य मात्र सुविधा एवं विलासिता की उपलब्धि मात्र रह गया है। शैक्षिक क्षेत्र सर्वाधिक प्रयोगों का क्षेत्र रहा है परन्तु प्रयोग करने वाले भूल जाते हैं कि आज जो हम बो रहे हैं इसकी फसल तुरन्त नहीं आ सकती और आज जो समस्याएँ हैं, उसका कारण मात्र शिक्षा का स्वरूप नहीं, समाज के बदलते हुए मूल्य भी हैं जिनकी परीक्षा शिक्षकों को करनी होगी। यदि ये अवांछनीय हैं तो स्वयं के आचरण में दर्शाने का साहस शिक्षकों को करना

होगा। उच्च शिक्षा में मूल्यों के प्रवेश और अनुशासन हमारे लिये पहेली बन गए हैं क्योंकि मात्र परीक्षा के लिए इन्हें पाठ्यक्रम का हिस्सा बना देना समाधान नहीं है। उच्च शिक्षा को विद्यालयी शिक्षा का गुणवत्तापूर्ण आधार अपेक्षित है। उच्च शिक्षा में अनुशासनहीनता का मापन सिर्फ विद्यार्थियों के चाल-चलन-पहनावे से करना तो नितान्त सतही है; मूल अनुशासनहीनता तो अध्ययन, परीक्षा और मूल्यांकन में है। ऐसा नहीं है कि सरकारों तथा विद्वानों ने इन पर विचार नहीं किया है या सदाशयता नहीं दिखाई है परन्तु समाधान असफल रहे क्योंकि कहीं न कहीं तुरन्त सुधार की इच्छा सभी पर हावी रहती है। सुधार होता नहीं है और योजनाएँ कागजों पर रेंगती रहती हैं या ठंडे बस्ते में डाल दी जाती हैं।

आज यह अवश्य प्रतीत होता है कि हम धैर्यवान बनें। तकनीकी स्मार्टनेस की कार्य योजनाओं की बजाय मानवीय सद्व्यवहार पर ध्यान दें। जिस भी स्थिति में हमें विद्यार्थी मिल रहा है उसको आवेशमय व्यवहार तथा विवेकपूर्ण व्यवहार में भेद शिक्षक अपने आचरण से समझाये। वर्तमान युवा तर्क की शक्ति और बेलगाम इच्छाओं से शासित है अनुशासन का पाठ आज शिक्षकों की शैक्षिक संस्थाओं में ही नहीं अपने घर-परिवार में भी अभिभावक के रूप में चुनौती है। इसे हमें स्वीकारना होगा यदि हम अपने परिवार में आक्रामक एवं सुविधाओं की माँग करते बच्चे देखते हैं तो हमें अपने सम्पर्क में आये प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी परिस्थिति परिवेश से परीक्षा करते हुए सम्भालना होगा। शिक्षक उच्चस्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा करे और अपने कर्तव्य से बेरुखी रखे तो समस्याएँ विकराल होंगी। अध्यापन समाज निर्माण का कार्य है। उच्च शिक्षा में छात्रसंघ चुनाव से परीक्षाओं तक का पुलिस की मदद से संभव होना एक गम्भीर विषय है। पिछले दिनों महाविद्यालय स्तर के शिक्षकों के लिए शोध कार्य की अनिवार्यता समाप्त की गई तो विरोध के स्वर सुनाई दिये। यदि इन विरोध के स्वरों की पूछताछ कर आँकड़े जुटाये जाते तो शोध कार्यों की भी कलई खुल जाती। उच्च शिक्षा के प्रश्न मात्र सवाल खड़े करके, विरोध करके, विद्यार्थियों की जिज्ञासा को बचकानी कहकर, स्मार्ट योजनाएँ बनाकर, अपनी विद्वता से विद्यार्थियों को भयाक्रान्त करके हल नहीं हो सकते।

सरकारी महाविद्यालयों में सामाजिक राजनैतिक दबावों से जो भी प्रवेश नीति रहती है उसे स्वीकार करके धैर्यपूर्ण ढंग से हमें विचार करना होगा। छात्रों की कक्षाओं से अनुपस्थिति आज मुख्य चुनौती है इसके यदि कारण ढूँढे जायें तो कारण विद्यार्थियों के निजी हैं जो मुख्य रूप से आर्थिक हैं। इन सभी आर्थिक कारणों की भरपाई सिर्फ छात्रवृत्ति, फीस माफी से हल नहीं हो सकती क्योंकि आर्थिक शब्द का अर्थ सिर्फ कपड़े, भोजन की मजबूरी नहीं विद्यार्थियों के अन्य व्यय का बनना है। अठारह वर्ष के बाद छात्र-छात्राओं द्वारा कहीं नौकरी करना गलत नहीं है परन्तु कक्षा में उपस्थिति के नियम का टूटना विद्यार्थियों के लिए अनुशासनहीनता है तो शिक्षकों के लिए पेशेवर दुविधा बन गया है। इस दुविधा में अनावश्यक उपदेश-निर्देश और प्रयोग शिक्षकों की कार्यक्षमता एवं मनोबल दोनों को हतोत्साहित करते हैं। आज महाविद्यालयी शिक्षा को एक नये नजरिये से देखने की आवश्यकता है उच्च शिक्षा मुख्यत: शोधपरक होनी चाहिए परन्तु हमें व्यवहार में देखना होगा कि विद्यार्थी शोधार्थी कैसे बने? यह कार्य महाविद्यालय शिक्षा कर सकती है। शोध के आँकड़े जुटाना भी अध्यापन क्षमता और गुणवता का ह्रास कर रहा है। विद्यालयी शिक्षा तो कोचिंग संस्थानों की भेंट चढ़ गयी है। महाविद्यालयी शिक्षा को एक बेहतर इन्सान या नागरिक बनाने की भूमिका दी जा सकती है और स्नातक का मूल्यांकन सिर्फ शैक्षणिक आधार पर न करके सहशैक्षणिक आधार पर भी करना चाहिए। जो शिक्षक सहशैक्षणिक कार्यभार सम्भालते हैं उनके शैक्षणिक कार्यभार में कमी होनी चाहिए और जो सिर्फ शैक्षणिक कार्यभार ही करना चाहते हैं उनसे स्तरीय शोध कार्य की अपेक्षा करनी चाहिए। देश की अनेक प्रतियोगी परीक्षाएँ स्नातक शिक्षा की अपेक्षा करती हैं। स्नातक होना सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठासूचक भी है इसलिए इस पाठ्यक्रम को विशेष रूप से नियमित विद्यार्थियों के लिए समग्र एवं सतत् विकास के आधार पर बनाना चाहिए। स्वयंपाठी एवं नियमित स्नातक पाठ्यक्रम को अलग श्रेणी का करना चाहिए। स्नातकोत्तर एवं शोध के स्तर पर हमें परिमाणात्मक मानकों की अपेक्षा गुणवत्ता के मानकों को अपनाने की अपेक्षा है।

वैदिक एवं उपनिषद् काल में परिस्थितियाँ अलग थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे जीवन के उच्च आदर्श हैं परन्तु व्यक्ति स्वातन्त्र्य और सामाजिक विषमताएँ उस काल में नहीं थी जो आज अनेक स्तरों पर हैं समाज संरचना जटिल हो गई है। इनसे जूझते हुए ही हमें शिक्षण को गम्भीर बनाना होगा तथा जो विद्यार्थी गम्भीर अध्ययन नहीं करना चाहते उनको सहशैक्षणिक गतिविधियों की अनिवार्यता से जोड़कर आवेश एवं कुंठा से दूर करना होगा। आज शैक्षिक परिवेश की सबसे बड़ी आवश्यकता विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तर देना है और मनोवैज्ञानिक तरीके से उन्हें असफलता और संघर्ष से भयमुक्त करना है। पैसा और इन्द्रिय भोग सब कुछ नहीं है, यदि हम ये युवाओं को सिखाना चाहते हैं,तो यह विशेष रूप से अभिभावकों एवं शिक्षकों को अपने आचरण में दर्शाना होगा। आज अभिभावक बच्चों को जीवन के संघर्ष का आनन्द लेने का उत्साह नहीं दे पा रहे। उनकी अधिकाधिक सुरक्षा की चाह में स्वयं भी अनैतिक हो रहे हैं और बच्चों को भी कुंठित कर रहे हैं। जीवन में सकारात्मकता लाये बिना हम पराविद्या के लिए जिज्ञासु नहीं हो सकते और ना ही अपरा-विद्या में पारंगत होकर सुखोपभोग कर सकते हैं। ❑

(विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र, सम्राट पृथ्वीराज चौहान, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर)

उच्च शिक्षा में अनुशासन की स्थापना

❑ डॉ. प्रकाश चंद्र अग्रवाल

अनुशासन स्वतः उत्पन्न होना चाहिए। पुरातन शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थी जीवन में कठोर अनुशासन पर बल देकर विद्यार्थी के जीवन की राह सरल बनाने हेतु सुसंगत मार्ग प्रदान करती थी ताकि बालक अनुशासन की आग में तप कर और निखर सके। परन्तु कालान्तर में डंडा व दंड विधान के स्थान पर समझाइश व स्वतः अनुशासन पर जोर दिया जाता है। परन्तु कहते हैं अति सर्वत्र वर्जियतेः। अनुशासन ज्यादा कठोर भी नहीं होना चाहिए व ज्यादा लचीला भी नहीं होना चाहिए अन्यथा निष्प्रभावी हो जायेगा।

वीणा के तारों को इतना मत कसो कि तार ही टूट जायें और इतना ढीला भी ना छोड़ो कि स्वर ही न निकलें।

यह पंक्तियाँ किसी बाद्य यंत्र हेतु ही उपयुक्त नहीं है वरन् जीवन के हरेक क्षेत्र में लागू होती हैं। अनुशासित जीवन से अनेक प्रकार की परेशानियों, तनावों व रोगों से बचा जा सकता है। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। यदि विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो अनुशासन की महती आवश्यकता है। शिक्षा विशेषतः उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता आम तथ्य हो गयी है, आपस में मारपीट करना, तोड़-फोड़, आगजनी, नारेबाजी व हड़ताल तथा बात का बतंगड़ बना देना आदि दृश्य विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में आम नजारा हो गया है।

परन्तु हम इस नजारे को सामान्य या रोज की बात मानकर छोड़ नहीं सकते, उन कारणों का पता लगा कर कि किन कारणों से छात्रों में असंतोष है तथा कारणों का विश्लेषण विद्यार्थियों के स्तर पर कर उसका समाधान निकाला जाना आवश्यक है। तुच्छ व संकुचित प्रवृत्ति के राजनेता अपनी रोटियाँ सेंकने हेतु इन छात्रों का उपयोग अपने क्षुद्र हितों की पूर्ति हेतु इनको भड़काकर व आग में घी डालकर इसको और अधिक प्रज्वलित करते हैं, जबकि विद्यार्थी हमारे आने वाले राष्ट्र की विरासत हैं। उनके आज के इन कदमों से सुरक्षित भविष्य की मंजिल तय होगी। यदि हम कारणों का विश्लेषण करें तो देखेंगे की चौदह वर्ष पूर्ण किये बालक सक्रिय श्रम शक्ति के अन्तर्गत शामिल होते हैं तथा उनकी मांसपेशियाँ व शरीर, मानसिक श्रम हेतु सक्षम हो जाते हैं। उनमें अनंत उर्जा व शक्ति होती है जिससे वे असंभव को संभव करने का हौसला रखते हैं। शिक्षाविद् जीन प्याजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त में यह बताया गया है कि चौदह वर्ष की आयु पूरी करने के पश्चात् बालक में चिंतन, मनन, समस्या-समाधान जैसी उच्च मानसिक शक्तियों का विकास हो जाता है। ये भी आम तथ्य है कि चौदह वर्ष के पश्चात बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है इस उम्र के बाद तो मात्र उपलब्धि में वृद्धि होती है। यह सब ज्ञात होने के पश्चात भी महाविद्यालयों में बड़ी उम्र के छात्र कागजी डिग्री की प्राप्ति हेतु अध्ययनरत हैं जिनका पढाई-लिखाई व ज्ञान प्राप्ति से कोई सरोकार नहीं है। रोजगार प्राप्ति के अभाव व सफेद कॉलर की नौकरी की चाह में वे डिग्रियों की संख्या बढ़ाए जा रहे हैं।

हमारे शिक्षाविद् और राजनेता ये सब जानते-बूझते हुए भी डिग्री प्राप्ति हेतु शिक्षा के वर्षों की संख्या बढ़ाते जा रहे हैं ताकि बेरोजगारों की फौज को कुछ वर्षों के लिए टाला जा सके। पहले 10+1+3 तथा बी.एड., एम.एड. एक वर्ष

के होते थे, पीएच.डी. हेतु सीधा रजिस्ट्रेशन होता था। अब रीट, रैट, नेट तथा विभिन्न कोर्सेज में प्रविष्ट होने हेतु प्रवेश परीक्षाएँ अनिवार्य कर दी गयी हैं इसके बाद भी नौकरी का कोई पता ठिकाना नहीं है। कहते हैं **'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'** दूसरों को सीख देना बहुत आसान होता है, राजनेता चतुर पारखी की भांति उच्च गुणवत्ता के मापदंडों की बात कर पूर्णत: अनुशासित शिक्षा व्यवस्था की बात करते हैं। परन्तु **'भूखे भजन न हो गोपाला, ये लो अपनी कंठी माला।'**

जब बच्चा शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्णत: परिपक्व हो गया है वह मात्र शिक्षा प्राप्ति लक्ष्य नहीं रख सकता, समाज उसको आशावादी नजरों से दायित्व संभालने के लिए देख रहा है। ऐसे मानसिक संताप व यंत्रणा की स्थिति जिसमें वह विवश है, काम करने की चाह है पर काम नहीं मिलता। इस प्रकार उर्जा का उपयोग न होने के कारण असंतोष पनपता है और अनुशासनहीनता उत्पन्न होती है।

अनुशासन स्वत: उत्पन्न होना चाहिए। पुरातन शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थी जीवन में कठोर अनुशासन पर बल देकर विद्यार्थी के जीवन की राह सरल बनाने हेतु सुसंगत मार्ग प्रदान करती थी ताकि बालक अनुशासन की आग में तप कर और निखर सके। परन्तु कालान्तर में डंडा व दंड विधान के स्थान पर समझाइश व स्वत: अनुशासन पर जोर दिया जाता है। परन्तु कहते हैं अति सर्वत्र वर्जियते:। अनुशासन ज्यादा कठोर भी नहीं होना चाहिए व ज्यादा लचीला भी नहीं होना चाहिए अन्यथा निष्प्रभावी हो जायेगा।

महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली को अपनाया गया है जिसमें कुल अंकों में आन्तरिक अंकों का भारांश काफी अधिक है इस कारण से शिक्षक व कॉलेज प्रशासन यह सोचता है की छात्र अंक पाने के लालच में उनके विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करेंगे चाहे शिक्षक बच्चों का समय बर्बाद करें या कक्षा में ना जाएँ ये उनकी मर्जी है और इस तरह से अनुशासन स्थापित हो जायेगा परन्तु आक्रोश की ये चिंगारी कभी न कभी व्यवस्था के विरोध में प्रगट अवश्य होती है और वह समस्त व्यवस्था को उलट-पुलट कर रख देती है। अत: यदि वास्तविक अर्थों में अनुशासन स्थापित करना है तो युवा हो रहे बच्चों की उर्जा का उत्पादक उपयोग कर उन्हें जीवन में आर्थिक व सामाजिक आधार पर स्वावलंबन प्रदान करें ताकि वे भविष्य की अनिश्चितता से मुक्त होकर देश व समाज की भलाई हेतु अपनी उर्जा लगायें व किसी के बहकावे में ना आयें। इस प्रकार आर्थिक स्वावलंबन व रोजगार की व्यवस्था की तरफ ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिये न कि अनुशासन किस प्रकार स्थापित किया जाये या युवाओं द्वारा जाहिर असंतोष को कैसे रोका जाये? अनुशासन स्वत: स्थापित हो जायेगा व देश विकास की राह पर आगे बढ़ेगा।

रहीम दास जी ने सही ही लिखा है-

एकै साधे सब सधे,
सब साधे सब जाय।
'रहिमन' मूलहि सींचिबो,
फूलहि फलहि अघाय॥

अर्थ- एक ही काम को हाथ में लेकर उसे पूरा कर लो। सब में अगर हाथ डाला, तो एक भी काम बनने का नहीं। पेड़ की जड़ को यदि तुमने सींच लिया, तो उसके फूलों और फलों को पूर्णता प्राप्त होगी।❑

(आचार्य, भौतिक शास्त्र एवं प्राचार्य क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा)

विज्ञान शिक्षा की दशा और दिशा

❑ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

वस्तुतः हमारे देश में विज्ञान शिक्षा की पूरी इमारत, नींव से शीर्ष तक जर्जर हो चुकी है। विद्यालयों में, विशेषकर सरकारी विद्यालयों में, न तो पर्याप्त संख्या में विषय के अध्यापक हैं और न ही प्रयोगशालायें। जो अध्यापक हैं भी उनमें अधिकतर का ज्ञान अधकचरा ही कहा जा सकता है। इसका कारण प्रमुख रूप से स्वयं महाविद्यालयों एंव विश्वविद्यालयों में शिक्षा एवं शोध के स्तर में गिरावट है जिसका एक चित्र प्रारंभ में प्रस्तुत किया जा चुका है। एक दशक पूर्व ही प्रो. यशपाल की रपट में भी स्नातक स्तर के शिक्षण की दयनीयता अवस्था का खुलासा किया गया था।

किसी भी देश की प्रगति की रीढ़, विज्ञान के क्षेत्र में उसकी प्रगति होती है। विज्ञान का सहारा लेकर ही इजरायल ने अपने यहाँ के विशाल मरुस्थलीय प्रदेशों को हरे भरे खेतों में परिवर्तित कर दिया और एक विश्व शक्ति के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर लिया। आज भी यह अपनी जी.डी.पी. का 4.3 प्रतिशत वैज्ञानिक शोध पर खर्च करता है जबकि अमेरिका में यह राशि केवल 2.8 है तथा चीन में केवल 2.00। तकनीकी शिक्षा क्षेत्र में उसके 'टेकिऑन' संस्थान की समस्त संसार में धाक है। अपनी इस प्रगति को अविछिन्न बनाये रखने के लिये यह देश प्रारंभ से उच्चतम स्तर तक विज्ञान की शिक्षा के सर्वोच्च कोटि के स्तर के प्रति सतत जागरूक रहता है।

इसके विपरीत भारत में विज्ञान शिक्षा की दशा कुछ संतोषजनक नहीं प्रतीत होती। विश्व के शीर्ष दो सौ विश्वविद्यालयों में भारत का एक भी नहीं है। यद्यपि शोधपत्रों के प्रकाशन की संख्या की दृष्टि से अब भारत का स्थान छठे तक पहुँच चुका है, परंतु उनका स्तर अभी भी अधिक से अधिक औसत ही कहा जा सकता है। देश के अंदर फेक (Fake) एवं प्रीडेटरी जर्नलों (Predatory Journals) की भरमार है तथा शोध प्रबंधों पर प्लैजियरिज़्म (Plagiarism) का घटाटोप है। सितंबर 2017 के 'नेचर' जैसे अति प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय जर्नल में छपे एक शोध पत्र के अनुसार लगभग 27 प्रतिशत भारतीय शोध पत्र प्रीडेटरी जर्नलों में प्रकाशित होते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की जनवरी 2017 में प्रकाशित स्तरीय जर्नलों की सूची में स्वयं में (गंभीर चूक के कारण) ऐसे 200 जर्नल सम्मिलित हैं (देखें रपट आर. प्रसाद, द हिंदू, 12.03.2018)। अवश्य ही यह दशा इसलिये है क्योंकि प्रारंभिक स्तर से ही विज्ञान शिक्षण में गुणात्मकता का अभाव है। विज्ञान के क्षेत्र में इस गिरावट पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुये देश के कतिपय मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने अप्रैल 2017 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को एक पत्र भी लिखा था। भारत सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रमण्यम भी स्वीकार करते हैं कि देश में विज्ञान और तकनीकी को अत्यधिक प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

वस्तुतः हमारे देश में विज्ञान शिक्षा की पूरी इमारत, नींव से शीर्ष तक जर्जर हो चुकी है। विद्यालयों में, विशेषकर सरकारी विद्यालयों में, न तो पर्याप्त संख्या में विषय के अध्यापक हैं और न ही प्रयोगशालाएँ। जो अध्यापक हैं उनमें अधिकतर का ज्ञान अधकचरा ही कहा जा सकता है। इसका कारण प्रमुख रूप से स्वयं महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा एवं शोध के स्तर में गिरावट है जिसका एक चित्र प्रारंभ में प्रस्तुत किया जा चुका है। एक दशक पूर्व ही प्रो. यशपाल की रपट में भी स्नातक स्तर के शिक्षण की दयनीय अवस्था का खुलासा किया गया था।

प्रारंभिक शिक्षा की दुरावस्था एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन की 2017 की रपट (ASER) से भी प्रकट होती है। यद्यपि विज्ञान पाठ्यक्रमों के स्तर में सुधार हुआ है, परंतु ऊपर बताये गये कारणों से उनका लाभ सामान्य विद्यार्थी तक नहीं पहुँच पा रहा है। प्रयोगशालाओं की दशा, पुनः सरकारी विद्यालयों में विशेष चिंतनीय है। यद्यपि अधिकतर निजी में भी थोड़ी ही बेहतर हो चुकी है। उपकरणों और रसायनों आदि का बहुत अभाव है जिसके चलते अथवा अध्यापकीय अकर्मण्यता के कारण विद्यार्थी अपने हाथों द्वारा प्रयोग करने से वंचित ही रह जाते हैं। अधिकतर तो परीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रयोग केवल कर के दिखा दिये जाते हैं। अभी कुछ समय पूर्व लेखक को रोहतक के एक अति प्रतिष्ठित विद्यालय की रसायन प्रयोगशाला देखने का अवसर

मिला। देख कर रोना आ गया। टूटे फूटे से मात्र एक दो बैलेंस (बैलेंस, रसायन प्रयोगशाला के लिये अनिवार्य हैं), बेतरतीब लगी अभिकर्मक बोतलें आदि। मुझे अपने दिन याद आने लगे और वर्तमान की गिरावट से अत्यधिक क्षोभ तथा निराशा हुई। कहना न होगा कि विज्ञान शिक्षण यदि केवल पुस्तकीय हो और उसमें प्रयोगात्मकता का अभाव रह जाये तो वह किसी भी प्रकार से आदर्श नहीं कही जा सकती। इस प्रकार की प्रारंभिक ट्रेनिंग से निकले विद्यार्थी यदि विश्वविद्यालय में गुणवत्तापरक शोध में असमर्थ रह जाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसीलिये ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिये सार्थक प्रयासों की नितांत आवश्यकता है।

प्रयोगशालाओं की दयनीय अवस्था को देखते हुये ''अटल टिंकरिंग लेबोरेटरीज प्रोग्राम'' की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत चुने हुये विद्यालयों को प्रयोगशालाओं के लिये उपकरण खरीदने एवं अगले पाँच वर्षों तक उनके रख-रखाव के लिये दस लाख रुपये मिलेंगे। इन्हीं प्रयोगशालाओं के माध्यम से विज्ञान और गणित के विशेषज्ञ भी समय-समय पर विषय में विद्यार्थी के ज्ञान को अद्यतन करने का कार्य करेंगे। निश्चय ही यह कार्यक्रम विद्यार्थियों की विषय में रुचि जगाने, उसे बढ़ाने तथा उनके ज्ञान क्षितिज के उचित विस्तार की अत्यावश्यक भूमिका का निर्वाह करेंगे।

केवल प्रयोगशालाओं की दशा सुधारना नाकाफी होगा। साथ में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के प्राध्यापकों को विद्वत्तापूर्ण कक्षा व्याख्यान के लिये ओरिएंटेशन कार्यक्रमों में संस्कार-व्याख्यानों द्वारा प्रेरित भी करना होगा। प्रारंभिक विद्यालयों के लिये योग्य अध्यापकों का निर्माण इन्हीं संस्थाओं का उत्तरदायित्व है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त उच्चतर संस्थानों में प्राध्यापकों की नियुक्ति में मेरिट के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ विज्ञान शिक्षण के ईमानदार प्रयासों पर पानी फेर देगी। प्री यूनिवर्सिटी तक के प्राध्यापकों के लिये नियमित रूप से रीफ्रेशर एवं ओरियेंटेशन कोर्सों की भी व्यवस्था उपयोगी रहेगी। प्रत्येक स्तर पर कक्षा में केवल व्याख्यान के स्थान पर उन्हें इंटरऐक्टिव भी बनाना होगा। स्मरणीय है कि अभी अमेरिका के मैसोचुसेट्स विश्वविद्यालय के विज्ञान शिक्षण विषय के प्रोफेसर **आर्थर आइसेन क्राफ्ट** ने कुछ समय पूर्व भारत आगमन पर इसी प्रकार के व्याख्यानों की आवश्यकता पर बल दिया था। कक्षा में खुले विचार विमर्श से ही विद्यार्थी विषय की गहराई एवं उसकी आत्मा से परिचित हो सकेगा।

देश में विज्ञान शिक्षण के स्तर को सुधारने की दृष्टि से भारत सरकार का एक और निर्णय स्तुत्य है। यह निर्णय है दस सरकारी एवं दस निजी विश्वविद्यालयों को विश्व स्तर का बनाने का संकल्प। इसके लिये नियमित शिक्षण के स्थान पर इन संस्थानों में शोधपरक शिक्षा दी जायेगी एवं सक्रिय शोध पर बल दिया जायेगा। ये संस्थान अन्यों के लिये निश्चय ही लैंप पोस्ट का कार्य करेंगे। इस प्रकार की ट्रेनिंग शिक्षार्थियों को आगे चलकर उच्चतम प्रतिष्ठानों में स्तरीय शोध के लिये प्रोत्साहित करेगी और उन्हें प्रीडेटरी जर्नलों के मायाजाल से मुक्त रखेगी। स्मरणीय है कि शोध के क्षेत्र में और अधिक धन का बजटीय प्रावधान भी आवश्यक होगा। ज्ञातव्य है कि अभी भारत जी.डी.पी. का केवल 0.74 प्रतिशत ही शोध पर खर्च करता है।

अंतिम बात। विद्यार्थियों का अंग्रेजी ज्ञान फिसल रहा है। ASER की 11वीं रपट के अनुसार पिछले 7-8 वर्षों में अंग्रेजी के सरल वाक्यों को समझ लेने वालों में 15 प्रतिशत की गिरावट आई है। अनेक सर्वेक्षणों के अनुसार केन्द्रीय विद्यालयों तक में विद्यार्थियों का अंग्रेजी ज्ञान सतही रह गया है। ऐसी दशा में विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से देने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। ASER की वर्ष 2016 की रपट के अनुसार मातृभाषा के माध्यम से विद्यार्थी गणित एवं विज्ञान विषयों को अधिक अच्छी तरह समझ पाये जबकि अंग्रेजी माध्यम वालों में सिद्धांतगत भ्रांतियाँ उत्पन्न हुई। भारत के महान वैज्ञानिक प्रो. सत्येन्द्र नाथ बोस ने तो कहा था कि विदेशी भाषा में विज्ञान की शिक्षा देना अनैतिक और अप्राकृतिक है। हिंदी अब विज्ञान सम्प्रेषण के लिये समर्थ भी है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने साढ़े सात लाख नये तकनीकी शब्द हिंदी में गढ़े हैं। समय आ गया है जब विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा हिंदी में ही दी जाय और कुछ समय बाद यह प्रक्रिया विश्वविद्यालयों में भी प्रारंभ हो सकती है। यदि भोपाल के अटल बिहारी विश्वविद्यालय में सभी तकनीकी विषयों की शिक्षा हिंदी में दी जा सकती है तो अन्यों में क्यों नहीं? माध्यम परिवर्तन कालांतर में अवश्य ही देश की वैज्ञानिक प्रगति में निश्चित योगदान करेगा।

वैश्विक परिदृश्य में उभरते नये भारत के लिये विज्ञान शिक्षण के स्तर को सुधारना एवं गुणवत्तापूर्ण उच्चस्तरीय शोध अत्यावश्यक है। इस दिशा में किये गये प्रयास ही उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक होंगे। ऐसा न होने पर चमत्कारी प्रगति के प्रयास केवल दु:स्वप्न ही सिद्ध होंगे। ❑

(पूर्व अध्यक्ष-रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

शिक्षा : आशंकाओं का आकाश

❑ जगमोहन सिंह राजपूत

शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य 2018 में जहाँ लगातार बढ़ रहे साधन-संपन्न वर्ग के लिए अनेक संभावनाएँ उजागर करता दिखाई देता है, वहीं अधिकतर बच्चों और युवाओं के लिए वह आशंकाओं के आकाश का विस्तार बन कर उभरता है। इस समय शिक्षा में युवाओं के समक्ष प्रतिस्पर्धा का जो स्वरूप उभरा है, वह प्रतिभा और समानता के अवसरों के बरक्स नवअभिजात वर्ग के बीच की खाई को निर्बाध बढ़ा रहा है। एक तरफ निजी स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में बढ़ती सुविधाओं और उसके लिए अंधाधुंध फीस बढ़ाने की प्रक्रिया तेज है, वहीं 'सरकारी' संस्थान हर स्तर पर कमी से और अधिक ग्रसित होते जा रहे हैं। किसी भी देश के विकास की गाथा उसके स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में लिखी जाती है। अगर इनके द्वारा ही अस्वीकार्य वर्गभेद पैदा हो रहा हो तो शायद हरेक देशवासी को गंभीरता से स्थिति पर चिंतन करना चाहिए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तीस करोड़ लोगों की अपेक्षाएँ आज उन्हीं संसाधनों में एक सौ तैंतीस करोड़ लोगों में विस्तार पा चुकी हैं। परिवर्तन की तेजी से सभी परिचित हैं। ज्ञान भंडार तीन वर्षों के अंतराल में लगभग दोगुना हो जाता है। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि समाज और शिक्षा के परिवर्तन भले ही समसामयिक परिस्थितियों में चकाचौंध पैदा करते हों और वैश्वीकरण के साथ लगातार बढ़ते भौतिकवाद के परिणाम लगते हों, समस्याओं का पहले का मूल आधार नया नहीं है और इसे आज से सौ साल पहले भी प्रकांड विद्वानों, विचारकों और अध्येताओं ने पहचाना था! मगर उनके समाधान की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। इसी कारण अब वे विकराल रूप में सामने आकर खड़ी हो गई हैं। शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने और उसे बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम, संस्थागत सुविधाएँ और संसाधनों की उपलब्धता, कर्मठ अध्यापकों की उपस्थिति जैसे अवयव आवश्यक हैं, मगर यही काफी नहीं हैं। शिक्षा से इतर संस्थाएँ, सामाजिक नेतृत्व, राजनेताओं की साख, प्रशासन पर लोगों के विश्वास की स्थिति और ऐसे अनेक पक्ष हैं जो बच्चों और युवाओं के मन-मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। देश के बच्चों के 'बड़े' होने में केवल माता-पिता, स्कूल-अध्यापक, पाठ्य पुस्तकों का योगदान नहीं होता है। उन पर इसका भी प्रभाव पड़ता है कि भारत की संसद कैसे अपना

कई बार नई पीढ़ी पर दोषारोपण किया जाता है कि उनके अंदर श्रद्धा कम हो रही है, उनकी अपनी प्रगति और ज्ञानार्जन में रुचि नहीं है! ऐसा कहने वाले लोग अपने उत्तरदायित्व और समाज में भयावह रूप से बढ़ी स्वार्थपरकता को भूल जाते हैं जो ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म देती है। जब किसी शिक्षा संस्थान के अध्यापकों के ऊपर यौन शोषण के आरोप लगते हैं और सही पाए जाते हैं, तब यही सिद्ध होता है कि वर्तमान पीढ़ी उन परंपरागत मूल्यों को जी नहीं पाई, जिन्हें गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय पुनर्जीवित कर दिया था और सारे देश ने उन्हें व्यावहारिक रूप में अंतर्निहित कर लिया था। दुर्भाग्य से जैसे-जैसे पीढ़ियाँ बदलीं, मानवीय मूल्यों का अनुपालन और मानवीय संवेदनाएँ क्षीण होती गईं। इस सबमें युवा पीढ़ी का दोष नहीं हो सकता है।

कार्य-निष्पादन करती है और देश में न्याय लोगों को कितनी सुगमता से मिल पाता है। जब बच्चे दूषित हवा-पानी की वजह से बीमार होते हैं तो वे भी यह पता लगा लेते हैं कि इसके लिए कौन जिम्मेवार है और क्यों है!

आठ अक्तूबर 1926 को महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था- 'विषय-विकारों से भरे वायुमंडल का अनजान और गुप्त प्रभाव देश के स्कूलों में जाने वाले बालकों के मन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। शहरी जीवन की परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घर की व्यवस्था, कई सामाजिक रूढ़ियाँ और क्रियाएँ एक ही चीज- विषय-विकार को भड़काती हैं। जिन बच्चों को अपने भीतर के पशु की खबर लग जाती है, वे उस वातावरण के प्रभाव का विरोध नहीं कर सकते। जाहिर है, बड़ों को अपने बालकों और जवानों के प्रति अपना कर्तव्य अदा करना हो तो उन्हें अपने में सुधार आरंभ कर देना चाहिए।' इस कथन का आज भी उतना ही महत्त्व है। संसद और विधानसभाओं की कार्यप्रणाली से अब सभी परिचित हैं और उसका सीधा प्रसारण भी देखते हैं। इन संस्थाओं के प्रति देश में 1950-60 के दौरान कितनी श्रद्धा और कितना सम्मान था, इसे वही बता सकते हैं जिन्होंने इसे जाना था। आज सामान्य जनजीवन, प्रशासन और व्यवस्था में जिस प्रकार अविश्वास बढ़ा है, निराशा का वातावरण पैदा हुआ है, उसे बदलने में समाज के हर वर्ग को अपना उत्तरदायित्व निभाना होगा।

कई बार नई पीढ़ी पर दोषारोपण किया जाता है कि उनके अंदर श्रद्धा कम हो रही है, उनकी अपनी प्रगति और ज्ञानार्जन में रुचि नहीं है! ऐसा कहने वाले लोग अपने उत्तरदायित्व और समाज में भयावह रूप से बढ़ी स्वार्थपरकता को भूल जाते हैं जो ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म देती है। जब किसी शिक्षा संस्थान के अध्यापकों

देश के बच्चों के 'बड़े' होने में केवल माता-पिता, स्कूल-अध्यापक, पाठ्य पुस्तकों का योगदान नहीं होता है। उन पर इसका भी प्रभाव पड़ता है कि भारत की संसद कैसे अपना कार्य-निष्पादन करती है और देश में न्याय लोगों को कितनी सुगमता से मिल पाता है। जब बच्चे दूषित हवा-पानी की वजह से बीमार होते हैं तो वे भी यह पता लगा लेते हैं कि इसके लिए कौन जिम्मेवार है और क्यों है!

के ऊपर यौन शोषण के आरोप लगते हैं और सही पाए जाते हैं, तब यही सिद्ध होता है कि वर्तमान पीढ़ी उन परंपरागत मूल्यों को जी नहीं पाई, जिन्हें गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय पुनर्जीवित कर दिया था और सारे देश ने उन्हें व्यावहारिक रूप में अंतर्निहित कर लिया था। दुर्भाग्य से जैसे-जैसे पीढ़ियाँ बदलीं, मानवीय मूल्यों का अनुपालन और मानवीय संवेदनाएँ क्षीण होती गईं। इस सबमें युवा पीढ़ी का दोष नहीं हो सकता है।

आज की स्थिति का अनुमान दूरदृष्टि रखने वालों के लिए कठिन नहीं था। गाँधीजी को भारत, उसके लोगों और उनकी अपेक्षाओं और संस्कृति की अद्भुत समझ थी। गाँधी वाङ्मय के खंड ग्यारह में उद्धृत उनकी भविष्य-दृष्टि इसका उदाहरण है- 'शिक्षा जो सुख-समृद्धि का साधन मानी जाती है, (हमारे लिए) घोरतम दुर्दशा का कारण सिद्ध हुई है। पढ़ते-पढ़ते शरीर तो चौपट हो ही जाता है। पढ़ाई-लिखाई के तरीके ऐसे हैं कि पढ़ने वाला तन, मन और धन से बिल्कुल खोखला हो जाता है। इसके अलावा समाज में अपनी स्थिति बनाए रखने का बोझ। मनुष्य ज्यों ही कुछ समझने-बूझने योग्य हुआ और उसने सिर उठा कर जीवनयापन करने की इच्छा की कि वह कुटुंब-परिवार के बोझ से दब जाता है।' आज सभी मानते हैं कि बच्चों को शिक्षित करना आवश्यक है। लड़कियों की शिक्षा के प्रति 'अनावश्यकता' की भावना अब समाप्त हो गई है। मगर साथ ही अच्छी शिक्षा और कौशलों के प्रशिक्षण की माँग बढ़ी है। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय तेजी से बढ़े। मगर इसके साथ ही स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक शिक्षा के स्तर में ह्रास स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आज प्रबंधन और इंजीनियरिंग के संस्थान सैंकड़ों की संख्या में बंद होने लगे हैं, क्योंकि वहाँ से उपाधियाँ लेकर निकले युवा क्षेत्र में अपेक्षित स्तर के ज्ञान और कौशल में कमजोर पाए गए- सौ में अस्सी! कारण ढूँढ़ना कठिन नहीं था। निजी संस्थान बड़ी संख्या में खुले, लक्ष्य केवल लाभ-अर्जन तक सीमित हो गए। सत्ता में आए राजनेताओं ने सरकारी संस्थानों में लगातार आ रही कमियों की ओर ध्यान नहीं दिया। अगर देश में स्कूल शिक्षकों के दस लाख से अधिक पद रिक्त हों, केंद्रीय विश्वविद्यालयों में चालीस से सत्तर प्रतिशत प्राध्यापक नियुक्त न किए गए हों तो शिक्षा की गुणवत्ता और स्तर नीचे तो आएँगे ही! इस स्थिति के बनाने में युवा पीढ़ी को दोष कैसे दिया जा सकता है। यह तो नीति निर्धारकों का उत्तरदायित्व था कि वे सारी नियोजन प्रक्रिया में यह व्यवस्था करते कि गुणवत्ता सुधार पर पहले से अधिक ध्यान दिया जाए। लेकिन हमारी शिक्षा व्यवस्था उत्साह, उद्यमिता और नवाचार पर अधिक ध्यान न पहले देती थी और न अब दे पा रही है। हालांकि इस संबंध में नई-नई योजनाओं की घोषणाएँ होती रहती हैं। अपेक्षा यही करनी चाहिए कि शिक्षा नीति, नया पाठ्यक्रम और नई पाठ्य पुस्तकें भारत की शिक्षा को नई दिशा देने में सक्षम होंगे। ❑

(युनेस्को में भारत के स्थायी प्रतिनिधि)

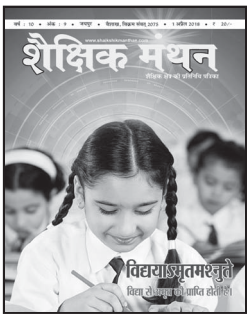

धर्म और विज्ञान साथ-साथ चलते हैं। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि बिना धर्म के विज्ञान लंगड़ा है और बिना विज्ञान के धर्म अंधा। ये दोनों एक -दूसरे पर आश्रित हैं, दोनों का एक ही लक्ष्य है-सत्य की खोज। इसलिए यदि धर्म गैलीलियो या डार्विन या अन्य वैज्ञानिकों का बहिष्कार करता है तो यह मूर्खता ही होगी। उतना ही मूर्खतापूर्ण होगा वैज्ञानिकों का यह कहना कि ईश्वर है ही नहीं। सच्चा वैज्ञानिक विश्वास रखता है, पर इसका मतलब नहीं है कि वह ईश्वरवादियों के पंथ का ही हो।

यहाँ और अब में निहित है मेरी अमरता

❑ **विलियम हरमन्स**

मैं न स्कूल से कुछ सीख पाया और न ही स्कूल मुझे कुछ सिखा पाया। ऊब होती थी मुझे स्कूल से। अध्यापक सार्जेंटो की तरह व्यवहार करते थे। मैं वह सीखना चाहता था जिसे जानने की मेरी इच्छा थी, पर वे मुझे सिर्फ परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए सिखाना चाहते थे। वहाँ सबसे ज्यादा घृणा मुझे प्रतियोगी प्रणाली से थी, खासकर खेलों में। इसीलिए मैं किसी काम के लायक नहीं था। कई बार मुझे स्कूल छोड़ने की सलाह दी गयी। म्यूनिख में मेरा स्कूल कैथोलिक स्कूल था। मुझे लगता था, मेरी ज्ञान पिपासा का मेरे अध्यापक गला घोंट रहे थे। उनका एकमात्र पैमाना परीक्षा में मिलने वाले अंक थे। इस प्रणाली से कोई अध्यापक आपको कैसे समझा सकता है?

बारह साल की उम्र से ही मैंने सत्ता में संदेह करना और अध्यापकों में अविश्वास करना सीख लिया था। मुझे अधिकांश ज्ञान घर में ही मिला, पहले चाचा से और फिर उस विद्यार्थी से जो सप्ताह में एक बार हमारे साथ खाना खाने आता था। वह मुझे भौतिकी और खगोल विद्या की पुस्तकें दिया करता था।

मैं जितना भी पढ़ता था, उतना ही अधिक उलझता जाता था। ब्रह्मांड की व्यवस्था और मानवीय मस्तिष्क की अव्यवस्था मुझे परेशान कर देती थी। वे वैज्ञानिक भी मुझे उलझन में डालते थे जो सृजन कैसे होता है, कब होता है, क्यों होता है के सवालों पर एकमत नहीं हो पाते थे।

एक दिन वह विद्यार्थी कांट की पुस्तक 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीज़न' ले आया। वह पुस्तक पढ़ने के बाद तो मुझे उस सब पर संदेह होने लगा जो मुझे सिखाया गया था। अब मुझे बाइबिल के ज्ञात ईश्वर में विश्वास नहीं रहा, प्रकृत्ति में अभिव्यक्त रहस्यमय ईश्वर मुझे भाने लगा।

ब्रह्मांड के बुनियादी नियम बहुत सादे हैं, पर हमारी ज्ञान-शक्ति सीमित है, इसलिए हम समझ नहीं पाते, सृजन की भी एक डिज़ाइन होती है। यदि हम उस पेड़ को देखें जिसकी जड़ें ज़मीन में पानी की तलाश कर रही हैं, अथवा एक फूल को देखें जो अपनी मीठी गंध मधुमक्खी तक पहुँचाता है, या फिर हम स्वयं को और उन आंतरिक शक्तियों को देखें जो हमें कुछ करने के लिए प्रेरित करती हैं तो हम यह अनुभव कर सकते हैं कि हम किसी रहस्यमय धुन पर नाच रहे हैं। और यह धुन बजाने वाला किसी अविश्वसनीय दूरी पर बैठा है तो हम सारे किताबी ज्ञान से उबर सकते हैं। इस धुन बजाने वाले को हम कोई भी नाम दे सकते हैं-सृजन-शक्ति अथवा ईश्वर या कुछ भी।

विज्ञान का कभी अंत नहीं होता क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क अपनी क्षमता के एक छोटे -से अंश का ही उपयोग करता है और अपनी दुनिया की मनुष्य की खोज भी सीमित ही है।

सृजन का प्रारम्भ आध्यात्मिक हो सकता है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हर सृजित चीज़ आध्यात्मिक है। यह सब मैं तुम्हें कैसे समझा सकता हूँ। हमें यह मान लेना चाहिए कि विश्व एक रहस्य है। प्रकृति न तो पूरी तरह भौतिक है और न ही पूरी तरह आध्यात्मिक । मनुष्य भी रक्त-मांस से कुछ अधिक है। यदि ऐसा नहीं होता कोई भी धर्म सम्भव नहीं था। हर कारण के पीछे एक और कारण होता है, सभी कारणों का प्रारम्भ और अंत अभी ज्ञात होना है।

यदि मुझे सृजन की संगति में विश्वास नहीं होता तो मैं इसे गणितीय फार्मूले में व्यक्त करने की तीस साल तक कोशिश नहीं करता रहता। अपने मस्तिष्क की सहायता से किये गये कार्य के प्रति मनुष्य की चेतनता ही उसे जानवर से बेहतर बनाती है, अपने को जानने का अवसर देती है और ब्रह्मांड से उसके रिश्तों को समझाती है।

मेरा यह मानना है कि मुझमें ब्रह्मांडीय धार्मिक भावनाएं हैं। मुझे यह कभी समझ नहीं आया कि सीमित पदार्थों की प्रार्थना से इन भावनाओं की तुष्टि कैसे हो सकती है। बाहर वाला पेड़ जीवन है, मूर्ति बेजान है। सारी प्रकृति सजीव है,

और मुझे लगता है यह जीवन मनुष्य से मिलते -जुलते ईश्वर को नकारता है।

मनुष्य के अपार आयाम हैं और वह अपनी

चेतना में ईश्वर को पाता है। एक ब्रह्मांडीय धर्म की कोई रूढ़ि नहीं होती। वह मनुष्य को बस यही सिखाता है कि ब्रह्मांड तर्कसंगत है और उसकी चरम नियति उसके बारे में विचार करने और उसके नियमों से सृजन करने की है।

मैं जगत को एक सुसंगत पूर्णता के रूप में अनुभव करना चाहता हूँ। हर कोषाणु में जीवन होता है। पदार्थ में भी प्राण होते हैं, यह ठोस ऊर्जा है। हमारे शरीर जेल की तरह हैं, और मैं स्वतंत्र होने की प्रतीक्षा करता हूँ, पर मैं इस बारे में नहीं सोचता कि मेरा होगा क्या। अब मैं यहाँ हूँ और मेरा दायित्व अब इसी विश्व के प्रति है। प्राकृतिक नियमों से चालित होता हूँ मैं और पृथ्वी पर मेरा यही काम है। विश्व को नये नैतिक आवेगों की आवश्यकता है और मुझे भय है कि सदियों से समझौतों के बोझ तले दबे चर्चों से यह आवेग नहीं प्राप्त हो सकते।

हो सकता है ये आवेग -उमंग गैलीलियो, केप्लर और न्यूटन की परम्परा वाले वैज्ञानिकों से प्राप्त हों। असफलताओं के बावजूद, तरह-तरह के उत्पीड़न के बावजूद इन लोगों ने यह प्रमाणित करने में अपना जीवन खपा दिया कि जगत एक इकाई है। मेरा मानना है कि इसमें मानवीकृत ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है।

एक सच्चा वैज्ञानिक प्रशंसा या आलोचना से विचलित नहीं होता और न ही वह उपदेश देता है। वह जगत पर पड़े परदे को हटाता है और लोग बड़ी उत्सुकता से, बिना किसी दबाव के एक नयी प्रस्तुति के लिए दौड़े आते हैं-एक नयी व्यवस्था, नयी सुसंगति और सृजन की भव्यता को देखने के लिए और जब मनुष्य ब्रह्मांड को संचालित करने वाले नियमों की विलक्षणता के प्रति चैतन्य होता है तो उसे अपनी लघुता का भान होने लगता है। वह उस मानवीय अस्तित्व की क्षुद्रता को देखता है जो महत्त्वाकांक्षी भी है और रहस्यमय भी। 'मैं तुमसे बेहतर हूँ' की जातिवाला है यह मानवीय अस्तित्व।

यह उसके भीतर के ब्रह्मांडीय धर्म की शुरुआत होती है। मैत्री और मानव- सेवा उसकी नैतिक संहिता बन जाती है। ऐसी नैतिक नींव के बिना हम अभिशप्त ही हैं। यदि हम विश्व का विकास करना चाहते हैं तो यह काम वैज्ञानिक ज्ञान-मात्र से नहीं हो सकता। आदर्शों से होगा यह काम। कन्फ्यूशियस, बुद्ध, ईसा और गांधी ने मनुष्यता के लिए वैज्ञानिकों से कहीं अधिक काम किया है, हमें शुरुआत मनुष्य के हृदय से उसके अंत:करण से करनी होगी। अंत:करण के आदर्शों की अभिव्यक्ति मनुष्यता की निस्वार्थ सेवा में ही प्रकट होती है।

धर्म और विज्ञान साथ-साथ चलते हैं। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि बिना धर्म के विज्ञान लंगड़ा है और बिना विज्ञान के धर्म अंधा। ये दोनों एक -दूसरे पर आश्रित हैं, दोनों का एक ही लक्ष्य है-सत्य की खोज। इसलिए यदि धर्म गैलीलियो या डार्विन या अन्य वैज्ञानिकों का बहिष्कार करता है तो यह मूर्खता ही होगी। उतना ही मूर्खतापूर्ण होगा वैज्ञानिकों का यह कहना कि ईश्वर है ही नहीं। सच्चा वैज्ञानिक विश्वास रखता है, पर इसका मतलब नहीं है कि वह ईश्वरवादियों के पंथ का ही हो।

बिना धर्म के करुणा नहीं होती। हममें से प्रत्येक की आत्मा उसी सजीव नियम से परिचालित होती है जो ब्रह्मांड को चलाता है।

मैं रहस्यवादी नहीं हूँ। प्रकृति के नियमों का पता लगाने की कोशिश का रहस्यवाद से कोई रिश्ता-नाता नहीं है। पर सृजन के समक्ष मैं स्वयं को बहुत विनयी पाता हूँ। विज्ञान के अपने अध्ययन में मुझे ब्रह्मांडीय आध्यात्मिक भावनाओं का अनुभव हुआ है, पर इसका मतलब यह नहीं कि मुझे रहस्यवादी कहा जाये जो ईश्वर के साक्षात दर्शन का अभिलाषी है। मेरा यह मानना है कि हमें इस बात की चिंता छोड़ देनी चाहिए कि इस जीवन के बाद क्या होगा। प्यार और सेवा का अपना कर्तव्य निभाते रहना पर्याप्त है। मेरा ब्रह्मांड में विश्वास है क्योंकि यह मुक्तिसंगत है। हर घटना कुछ नियमों के अनुसार होती है। और मेरा इस पृथ्वी पर अपने होने के उद्देश्य में भी विश्वास है। मेरी चेतना की भाषा है मेरा अंतर्ज्ञान -मुझे उस पर भी विश्वास है। लेकिन स्वर्ग और नरक के बारे में अनुमान लगाते रहने में मेरा कोई विश्वास नहीं है। मेरा संबंध आज से है-यहाँ और भी से।

बहुत से लोगों का यह मानना है कि मनुष्य -जाति का विकास प्रयोगसिद्ध, आलोचनात्मक प्रकृति के अनुभवों पर निर्भर करता है। लेकिन मेरा कहना है कि सच्चा ज्ञान वियोजन के दर्शन के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है। विचारों के चले-चलाये रास्तों पर चलने से नहीं, अंतर्ज्ञान से ही विश्व का सुधार हो सकता है। अंतर्ज्ञान हमें असम्बद्ध तथ्यों को देखने और उनके बारे में सोचना सिखाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक वे सब तथ्य एक नियम के अंतर्गत नहीं आ जाते। सम्बद्ध तथ्यों की खोज का मतलब है उसी से संतुष्ट रहना जो हमारे पास है, जबकि आवश्यकता नये तथ्यों को खोजते रहने की है।

अंतर्ज्ञान नये ज्ञान का पिता है, जबकि अनुभववाद पुराने ज्ञान का संचय मात्र है। बुद्धि से नहीं, अंतर्ज्ञान से व्यक्ति 'खुल जा सिमसिम' का अनुभव करता है। वास्तव में, बौद्धिकता नहीं, अंतर्ज्ञान से मनुष्यता का विकास होता है। यही व्यक्ति को सिखाता है कि जीवन में उसका उद्देश्य क्या है। प्रसन्न होने के लिए मुझे अमरत्व के आश्वासन की आवश्यकता नहीं है। मेरी शाश्वतता 'अब' है। मेरा एक ही उद्देश्य है-जहाँ मैं हूँ, वहाँ अपने होने के उद्देश्य को पूरा करना! यह उद्देश्य मुझे मेरे माता-पिता अथवा वातावरण से नहीं मिला है। कुछ अज्ञात कारकों ने इसके प्रति प्रेरित किया है। यही कारक मुझे शाश्वतता का हिस्सा बनाते हैं। ❑

(आइंस्टीन से विलियम हरमन्स की 1930 से 1954 के बीच हुई भेंट-वार्ताओं पर आधारित अनुवाद)

शिक्षा क्षेत्र में इंस्पेक्टर राज का अंत

❑ अभिनव प्रकाश

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा देश के कुछ उच्च शिक्षण संस्थानों को पूर्ण स्वायत्तता देने के फैसले की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। इस फैसले के बाद ये संस्थान अपने कार्यों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी या किसी भी अन्य सरकारी संस्था के हस्तक्षेप से मुक्त रहेंगे। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (एनएएसी) द्वारा दिए गए अंकों के आधार पर श्रेष्ठ संस्थानों को अपने नए पाठ्यक्रम चलाने, शोध कार्य करने, फीस निर्धारित करने, स्व वित्त पोषित विशेष पाठ्यक्रम आरंभ करने, उनके लिए शिक्षक और विशेषज्ञों को प्रोत्साहन आधारित पारिश्रमिक पर नियुक्त करने इत्यादि की छूट होगी। इसके लिए उन्हें हर बार यूजीसी से स्वीकृति नहीं लेनी पड़ेगी और न ही यूजीसी और सरकारी अधिकारी बार-बार सत्यापन के नाम पर इन्हें परेशान करेंगे। यह शिक्षा के क्षेत्र में इंस्पेक्टर राज समाप्त करने और नीतिगत फैसले लेने की दिशा में अभी तक का सबसे बड़ा कदम है। ये शिक्षा संस्थान अपने शिक्षकों को योग्यता के आधार पर सातवें वेतन आयोग से भी अधिक वेतन दे सकेंगे ताकि शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित किया जा सके। ये अपना पाठ्यक्रम स्वयं निर्धारित कर सकेंगे। अपने अन्य केन्द्र भी स्थापित कर सकेंगे और ऑनलाइन कोर्स या शॉर्ट-टर्म विशेषज्ञ पाठ्यक्रमों के मोर्चे पर भी पहल कर सकते हैं। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ स्वायत्तता का अभिप्राय निजीकरण से नहीं हैं जैसा कि प्रचारित करने की कोशिश की जा रही है। इस फैसले के बाद भी शिक्षा संस्थानों में सरकार के आरक्षण जैसे अन्य प्रावधान भी पहले जैसे ही लागू रहेंगे। इस कदम का मुख्य उद्देश्य शिक्षण संस्थानों को तेजी से बदलती दुनिया और अर्थव्यवस्था के अनुरूप ढलने में सक्षम बनाना है। अभी तक भारत में चल रही उच्च शिक्षा व्यवस्था बेहद घिसी-पिटी है और गिनती के कुछ संस्थानों को छोड़ दें तो बाकी मात्र डिग्री देने के अलावा समय की बर्बादी भर ही हैं। इनमें पढ़ने के बाद छात्र शायद ही कोई नौकरी पाने की योग्यता रखते हैं। भारत में बेरोजगारी का एक सबसे बड़ा कारण यह भी है कि तमाम संस्थानों की पढ़ाई-लिखाई वहाँ से शिक्षा प्राप्त छात्रों को किसी नौकरी के योग्य बनाती ही नहीं हैं। एक सर्वे के अनुसार वर्ष 2010 में भारत में 40 लाख सिविल इंजीनियरों की आवश्यकता थी, परंतु केवल 5,09,000 ही इस योग्य थे कि उन्हें काम दिया जाए। इसके बावजूद बेमानी शिक्षा व्यवस्था और बेकार की डिग्री बाँटने का सिलसिला चलने दिया गया जिसका परिणाम आज दिख रहा है। एक ओर बड़ी संख्या में पढ़े-लिखे लोग नौकरी की तलाश में भटक रहे हैं वहीं दूसरी ओर चंद सरकारी नौकरियों

दशकों की समाजवादी राजनीति और मानसिकता ने देश को इस कदर खोखला कर दिया है कि देश आँखें होने के बावजूद अंधा बन गया है। वह यह देख पाने में असमर्थ है कि दुनिया में कोई भी ऐसा देश नहीं जो समाजवादी नीतियों और सार्वजनिक क्षेत्र के दम पर विकसित देश बना हो। दुनिया में जितने भी समृद्ध और सफल देश हैं वे सभी पूंजीवादी और निजी क्षेत्र की प्रधानता वाले देश हैं और उन देशों की शिक्षा व्यवस्था बाजार और उद्योग जगत से सीधे जुड़ी हुई है यानी रोजगार और नौकरी के लिए जिन कोर्स और पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है उन्हें शुरू करने में उन्हें समय नहीं लगा।

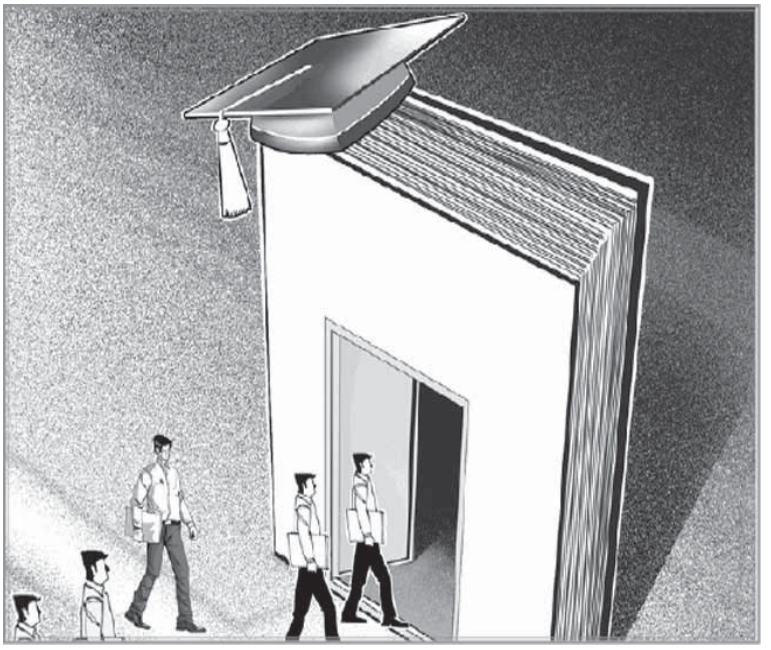

के लिए मारामारी हो रही है।

एक अनुमान के तहत वर्ष 2020 में देश को 4,27,000 आर्किटेक्ट यानी वास्तुकारों की दरकार होगी जिसमें से तब सिर्फ 17 प्रतिशत ही उपलब्ध होंगे। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि देश में तमाम क्षेत्रों में नौकरी तो है, परंतु उन क्षेत्रों में आवश्यक रूप से कुशल लोग ही उपलब्ध नहीं हैं और जिन क्षेत्रों में लोगों ने पढ़ाई की है उनका नौकरी और रोजगार से लेनादेना ही कम है। भारत में कौशल विकास की स्थिति भी शर्मनाक है। इस मोर्चे पर केवल दो प्रतिशत कामगारों को ही औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है जबकि ब्रिटेन में यह आँकड़ा 68 प्रतिशत, जर्मनी में 75 प्रतिशत और दक्षिण कोरिया में 96 प्रतिशत है। इसके बावजूद जब सरकार कौशल विकास और उद्यमिता को बढ़ावा देना चाहती है और उन्हें शिक्षा व्यवस्था में जोड़ना चाहती है तो उसका उपहास उड़ाया जाता है, विरोध किया जाता है कि सरकार सबको सिर्फ 'निजी कंपनियों का मजदूर' बनाना चाहती है।

दशकों की समाजवादी राजनीति और मानसिकता ने देश को इस कदर खोखला कर दिया है कि देश आँखें होने के बावजूद अंधा बन गया है। वह यह देख पाने में असमर्थ है कि दुनिया में कोई भी ऐसा देश नहीं जो समाजवादी नीतियों और सार्वजनिक क्षेत्र के दम पर विकसित देश बना हो। दुनिया में जितने भी समृद्ध और सफल देश हैं वे सभी पूंजीवादी और निजी क्षेत्र की प्रधानता वाले देश हैं और उन देशों की शिक्षा व्यवस्था बाजार और उद्योग जगत से सीधे जुड़ी हुई है यानी रोजगार और नौकरी के लिए जिन कोर्स और पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है उन्हें शुरू करने में उन्हें समय नहीं लगा।

इसके विपरीत अपने देश में तो यह लगता है कि किसी को इसकी परवाह नहीं कि सामाजिक विज्ञान या मानविकी के क्षेत्र में क्या पढ़ाया जा रहा है? इसी तरह राजनीति विज्ञान हो या समाजशास्त्र या फिर इतिहास उनमें भी दशकों पुराने पाठ्यक्रम चल रहे हैं। इनमें कौन से नए शोध हुए हैं या फिर क्या कोई नया मत निकल कर सामने आया है? सच तो यह है कि इन क्षेत्रों में भी भारत पर होने वाले लगभग सभी शोध अमेरिका और यूरोपीय विश्वविद्यालयों से ही निकल कर आते हैं। यहाँ बैठे लोग विश्व गुरु होने का ढोल भर ही पीटते हैं। ऐसी दयनीय स्थिति के बाद भी भारत में एक बड़ा तबका ऐसा है जो किसी भी परिवर्तन का विरोध करेगा और दस तरह की कहानियाँ बनाएगा कि किस प्रकार स्वायत्तता देना एक गलत कदम है या फिर मात्र कुछ ही संस्थानों को स्वायत्तता देना भेदभाव है। देश का भला चाहने वालों को दो बातें समझनी अत्यंत आवश्यक हैं। पहली, तेजी से बदलती तकनीक और अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में वह दौर समाप्त हो रहा है जब जीवन के आरंभ में कुछ वर्षों तक पढ़ाई कर जीवन भर उसी योग्यता के दम पर नौकरी करते रह सकते थे। अब लोगों को नियमित अंतराल पर नए कोर्स करने, नए उभरते क्षेत्रों में योग्यता हासिल करने की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरी, शिक्षा व्यवस्था का बाजार से जुड़ना अवश्यंभावी है और सरकारी बाबू राज से मुक्त होना भी उतना ही आवश्यक है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भी सरकार में रहते हुए ऐसी शिक्षा व्यवस्था की ही वकालत की थी जो रोजगारपरक होने के साथ ही उद्योग एवं व्यापार जगत की जरूरत के अनुरूप हो। इसके लिए उन्होंने शिक्षण संस्थानों के कौशल विकास, नए पाठ्यक्रम, मूल्य वर्धित पाठ्यक्रम को सरलता और तत्परता से लागू करने की क्षमता पर बल दिया था।

बहरहाल देश ने आंबेडकर के विपरीत नेहरूवादी और समाजवादी नीति को अपनाया और परिणाम सबके सामने हैं। ऐसे में उम्मीद है कि मोदी सरकार की यह पहल सही दिशा में पहला कदम साबित होगी। सरकार सिर्फ खानापूर्ति तक ही नहीं रुकेगी, बल्कि इसके सभी पहलुओं को देखते हुए सही से लागू भी करेगी। साथ ही स्कूली शिक्षा के स्तर पर भी बड़ा परिवर्तन करेगी, क्योंकि वहां के हालात तो और भी ज्यादा खराब हैं, क्योंकि किसी भी देश की उच्च शिक्षा का स्तर अंततः इस पर निर्भर करता है कि वहां प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का स्तर क्या है? यदि शिक्षा की यह आधारशिला सही है तो फिर उच्च शिक्षा की इमारत बुलंद बनती है।❑

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में
प्राध्यापक एवं स्तंभकार हैं)

साभार – दैनिक जागरण

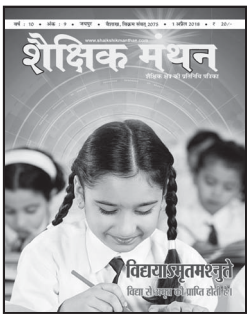

जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान वृद्धि के बढ़ते खतरों को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि सभी देश आपसी मतभेदों, मनमुटाव, पूर्वाग्रहों को नजरअंदाज करते हुए एकजुट होकर इन समस्याओं के स्थायी समाधान हेतु एक व्यावहारिक व्यूह रचना बनाकर उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करें। विकसित देश और विकासशील देश संयुक्तरूप से जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान वृद्धि जैसी समस्याओं के समाधान हेतु अपनी जिम्मेदारी निभायें। ऐसा करके ही सम्पूर्ण विश्व का भविष्य प्रकाशवान, उज्ज्वल एवं सुरक्षित होगा तथा कृषि पर मंडराते संकट के बादलों को दूर करके समस्त विश्व को 'खाद्य सुरक्षा' का कवच प्रदान करना संभव है।

जलवायु परिवर्तन : कृषि पर मंडराता खतरा

❑ डॉ. अनीता मोदी

बढ़ती जनसंख्या, बढ़ते उद्योगों एवं विध्वंस होते वनों एवं जंगलों के कारण विश्व 'बढ़ते तापमान' एवं जलवायु परिवर्तन जैसी ज्वलन्त समस्याओं से जूझता हुआ विनाश के कगार पर खड़ा है। वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी के जलवायु में परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। ऐसा अनुमान व्यक्त किया गया है कि गत एक शताब्दी के दौरान पृथ्वी के औसत तापमान में लगभग 0.74 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि हुई है। जबकि गत पचास वर्षों के दौरान वैश्विक तापमान में वृद्धि दुगुनी हो गई है। इससे भी अधिक चिन्ताजनक तथ्य यह है कि इक्कीसवीं सदी में तापमान में वृद्धि तीन से पाँच डिग्री सेल्सियस होगी जो कि समस्त विश्व के लिए खतरनाक होगी।

मानव विकास रिपोर्ट में भी आईपीसीसी के अध्ययन के आधार पर यह चेतावनी समस्त विश्व को दी गई है कि यदि वर्तमान प्रवृत्ति के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग जारी रही तो जलवायु परिवर्तन के घातक परिणाम सामने आयेंगे। इस रिपोर्ट में विशेष रूप से विकासशील और निर्धन देशों को सतर्क किया गया है कि जलवायु परिवर्तन के सर्वाधिक घातक प्रभाव इनको सहन करने पड़ेंगे क्योंकि इनके पास ऐसी मुसीबतों का मुकाबला करने के लिए न तो पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं और न ही कोई प्रभावी उपाय विद्यमान हैं।

विभिन्न रिपोर्टों एवं आँकड़ों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि विश्व में बढ़ते तापमान व जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पादन में कमी दर्ज की जा रही है, फसल चक्र अनियमित व असंतुलित होता जा रहा है। यूरोप में अधिक गर्मी के कारण गेहूँ के उत्पादन में कमी आई है। भारत सहित अनेक विकासशील देशों में भी जलवायु परिवर्तन के कारण गेहूँ, चावल व दाल के उत्पादन में कमी आने की आशंका है जिसके कारण इन देशों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी। यही नहीं अमेरिकी पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2060 तक विश्व में चावल, गेहूँ तथा अन्य उत्पादन 1.2 से 7.6 प्रतिशत तक कम हो जायेगा।

पर्यावरण से संबंधित प्रसिद्ध 'विज्ञान पत्रिका' की रिपोर्ट में वैश्विक तापमान मे वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन के कृषि पर भयावह परिणामों के प्रति सचेत करते हुए आगाह किया गया है कि यदि विकसित एवं विकासशील देशों ने मिलकर ग्लोबल वार्मिंग व जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध सार्थक कदम नहीं उठाया तो इस सदी के अंतिम वर्षों में दुनिया की आधी आबादी भूखे रहने को मजबूर हो जायेगी। वैज्ञानिकों ने जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रतिकूल प्रभावों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया है कि इसके कारण न केवल जल स्रोत सूख जायेंगे अपितु शीतोष्ण व समशीतोष्ण क्षेत्रों में अधिकांश उपजाऊ भूमि में बढ़ते तापमान के कारण दरारें पड़ जायेंगी। यही नहीं, चावल व मक्का की उपज की मात्रा वर्तमान की तुलना में 40 प्रतिशत रहने से 'खाद्य सुरक्षा' खतरे में पड़ जायेगी। इस रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया है कि जलवायु परिवर्तन का सर्वाधिक दुष्प्रभाव दक्षिणी ब्राजील, उत्तरी भारत, दक्षिणी चीन, दक्षिणी आस्ट्रेलिया एवं अफ्रीका पर पड़ेगा। गौरतलब है कि इस क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या की आजीविका का मुख्य आधार कृषि ही है। अतः जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि व्यवस्था पर संकट पड़ने से अधिकांश जनसंख्या के लिए रोजी-रोटी की व्यवस्था करना मुश्किल हो जायेगा, इसके साथ ही बढ़ते तापमान के कारण कृषि उपज में कमी होने से खाद्यान्नों की व्यवस्था करना चुनौतीपूर्ण हो जायेगा। ज्ञातव्य है कि शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण क्षेत्र में विश्व की लगभग आधी जनसंख्या निवास करती है जिसकी इस सदी के अंत तक दुगुनी होने की संभावना है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि पर मंडराते खतरों के प्रति सचेत करते हुए इंटरनेशनल

सेंटर फॉर रिसर्च इन एग्रोफोरेस्ट्री के निदेशक ने भी अपनी रिपोर्ट में बताया है कि आने वाले दिन जलवायु परिवर्तन के भीषणतम उदाहरण होंगे जो कृषि उत्पादकता पर चोट, जल दबाव, बाढ़, चक्रवात व सूखे जैसी गंभीर दशाओं को जन्म देंगे। हकीकत है कि जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से सम्पूर्ण विश्व में 'खाद्यान्न संकट' की विकरालता बढ़ जायेगी जो कि चिन्ता व चिन्तन का विषय है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अध्यक्ष डोमेनिक स्ट्रास ने भी जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व स्तर पर खाद्यान्न संकट की भयावह स्थिति का चित्रण करते हुए बताया है कि खाद्य पदार्थों की कमी लगातार बढ़ती कीमतों को तो जन्म देगी ही, साथ ही माँग के बराबर अनाज नहीं मिल पायेगा।

हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसलें ''गेहूँ व धान'' हैं। कुल फसल उत्पादन में धान का अंश लगभग 42.5 प्रतिशत है, किन्तु कटु सत्य यह है कि तापमान वृद्धि के कारण धान के उत्पादन में कमी दर्ज की जा रही है। ऐसा पाया गया है कि तापमान में 2 सें.ग्रे. की वृद्धि होने से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हैक्टेयर से कम होता है। इसके साथ ही, धान की निर्भरता वर्षा पर अधिक है तथा जलवायु परिवर्तन के कारण बाढ़ व सूखे की बारम्बरता बढ़ती जा रही है जिससे धान के उत्पादन में अधिक कमी आने की संभावना है। विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह संभावना व्यक्त की गई है कि देश के कुछ हिस्सों में सूखे की गंभीर स्थिति उत्पन्न होने से जल संकट की भयावह स्थिति दृष्टिगोचर हो सकती है, जबकि देश के कुछ दूसरे हिस्सों को बाढ़ की त्रासदी झेलनी पड़ सकती है। वास्तविकता यह है कि देश में उपलब्ध जल की मात्रा में कमी आने से देश की कृषि व्यवस्था खतरे में पड़ जायेगी; किसानों को सिंचाई हेतु पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध नहीं होने से उनकी फसल बरबाद हो जायेगी; भू-जल स्तर में तीव्र गिरावट आने से पेयजल संकट और अधिक बढ़ जायेगा। जलवायु परिवर्तन की वजह से अर्द्धशुष्क क्षेत्रों व शुष्क क्षेत्रों में कृषि व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लग जायेगा तथा सिंचाई हेतु जल प्राप्त नहीं होने से फसलें चौपट हो जायेंगी। इसी भांति, बड़ी नदियों के तटों पर जल बहाव, लवणता, बाढ़ व औद्योगिक प्रदूषण में वृद्धि के कारण जल की उपलब्धता में कमी आने का खतरा बढ़ जायेगा। हमारे देश में खेती, उद्योगों व पीने के लिए 'भूमिगत जल' का महत्त्व सर्वविदित है। किन्तु जलवायु परिवर्तन के साथ उचित जल प्रबंधन व जल उपयोग व्यवस्था विद्यमान नहीं होने के कारण भू जल स्तर तेजी से गिरता जा रहा है जिसके कारण 'डार्क जोन एरिया' में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथा आगामी वर्षों में जल की समस्या भीषण होने की प्रबल संभावना है जिसके कारण 'कृषि व्यवस्था' की स्थिति निराशाजनक होगी।

चूंकि हमारे देश की 70 प्रतिशत जनता खेती से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है, कृषि ही उनके जीवन-यापन का मुख्य स्रोत है1 अत: जलवायु परिवर्तन के भयावह खतरों से निपटने के लिए प्रभावी रणनीति का क्रियान्वयन अतिशीघ्र किया जाना आवश्यक है। गौरतलब है कि हमारे किसान भी खेती की गलत पद्धतियों को अपनाकर धरती के तापमान में वृद्धि कर रहे हैं; जलवायु परिवर्तन की विभीषिका को बढ़ा रहे हैं। ऐसा पाया गया है कि अगर रासायनिक खेती के स्थान पर कार्बनिक खेती की पद्धति को क्रियान्वित किया जाय तो प्रतिवर्ष एक हैक्टेयर खेत से तीन टन के लगभग कार्बनडाइऑक्साइड को हवा में घुलने से रोका जाना संभव है तथा जलवायु परिवर्तन की त्रासदी को कुछ सीमा तक रोका जाना संभव है। इसी प्रकार, जलवायु परिवर्तन के कृषि पर नकारात्मक प्रभावों को रोकने के लिए फसल और फसल किस्मों में परिवर्तन किया जाना जरूरी है। ऐसी वैकल्पिक फसलों के विकास हेतु अनुसंधान व खोज को प्राथमिकता दी जाय जो कि जलवायु परिवर्तन की मार को सह सकें, जो अधिक बारिश, गर्मी या सर्दी जैसे प्रकोपों को झेल सकें। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि पद्धतियों में परिवर्तन करके जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने की दिशा में सार्थक कदम उठाए हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जलवायु मानकों में परिवर्तनों की मार को बुआई की वैकल्पिक विधियों, छोटे अंतरालों तथा उचित व उन्नत जल प्रबंधन व सिंचाई प्रणालियों, अनुकूल पौधारोपण कार्यक्रमों तथा भू-उपयोग नियोजन व्यवस्था में सुधार करके कम किया जा सकता है। जैव विविधता, मिश्रित खेती, पशुधन आदि को प्रोत्साहित करके भी जलवायु परिवर्तन के दबाव को कम किया जाना संभव है।

जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान वृद्धि के बढ़ते खतरों को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि सभी देश आपसी मतभेदों, मनमुटाव, पूर्वाग्रहों को नजरअंदाज करते हुए एकजुट होकर इन समस्याओं के स्थायी समाधान हेतु एक व्यावहारिक व्यूह रचना बनाकर उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करें। विकसित देश और विकासशील देश संयुक्तरूप से जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापमान वृद्धि जैसी समस्याओं के समाधान हेतु अपनी जिम्मेदारी निभायें। ऐसा करके ही सम्पूर्ण विश्व का भविष्य प्रकाशवान, उज्ज्वल एवं सुरक्षित होगा तथा कृषि पर मंडराते संकट के बादलों को दूर करके समस्त विश्व को 'खाद्य सुरक्षा' का कवच प्रदान करना संभव है।❑

(प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय (पी.जी.) कॉलेज, खेतडी, राजस्थान)

आस्था के राजा - रवि वर्मा

यह सच है कि भारतीय संस्कृति निराकार ईश्वर की उपासक रही है मगर आस्था को मजबूत करने हेतु चित्र या मूर्ति का सहारा लेने का विरोध नहीं कर इसे निराकार की उपासना का ही एक चरण माना गया है। इस दृष्टि से रविवर्मा ने देवी-देवताओं के चित्र बना कर तथा बाद में उनका प्रकाशन कर करोड़ों लोगों की आस्था को मजबूत आधार प्रदान किया। जिन लोगों का मंदिर जाना संभव नहीं होता उनको घर में ही मंदिर प्रदान कर दिया। दीपावली पर हर घर में लक्ष्मी के मंदिर की स्थापना इसका उदाहरण है।

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

शिक्षा प्राप्त करने में आँख का महत्त्व सर्वाधिक है। एक बार देखना सौ बार सुनने या पढ़ने से अधिक प्रभावी होता है। यही कारण है कि लिखे विवरण को समझाने के लिए चित्रों का प्रयोग किया जाता है। बच्चों की पुस्तकों में यथा संभव रंगीन चित्र दिए जाते हैं ताकि लिखित सूचनाएँ अधिक बोधगम्य हो सकें। इस दृष्टि से महान भारतीय चित्रकार राजा रवि वर्मा को एक देश का एक महान शिक्षक भी कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति को अपने चित्रों से जीवन्त करने वाले राजा रवि वर्मा के 170 वें जन्मदिन पर उनकी जीवनयात्रा की चर्चा करना उपयोगी होगा।

हिंदू धर्म में आस्था रखने वाले लोग ज्ञान-विज्ञान से जुड़े कार्य को शुरू करते समय नदी के किनारे सफेद साड़ी पहने, दो हाथों में वीणा है, एक में पुस्तक और एक में सफेद मोतियों की माला लिए सरस्वती देवी के जिस चित्र का सहारा लेते हैं वह महान चित्रकार राजा रवि वर्मा की देन है। अब से लगभग सवा सौ साल पहले जब सरस्वती का यह रूप लोगों के मस्तिष्क में नहीं था तब ज्ञान-विज्ञान के कार्यक्रम आज की तरह प्रारम्भ नहीं हो पाते थे। ऐसे ही कई चित्रों का आविष्कार कर राजा रवि वर्मा ने भारतीय संस्कृति को मजबूत आधार प्रदान किया है।

नैसर्गिक प्रतिभा के धनी

रवि वर्मा का जन्म केरल के एर्नाकुलम जिले में किलिमानूर रियासत में एक अत्यन्त सृजनशील परिवार में हुआ। उनके पिता एज्हुमविल नीलकंठन भट्टातिरिपद बहुत विद्वान थे। रवि वर्मा की माता उमायाम्बा थम्बुरत्ति एक कवयित्री और लेखिका थीं। माता द्वारा लिखित पुस्तक 'पारवती स्वयंवरम' को राजा रवि वर्मा ने माता की मृत्यु के बाद प्रकाशित करवाया था। रवि वर्मा चित्रकारी की नैसर्गिक कला का प्रदर्शन बचपन से ही करने लगे थे। घर की दीवारों को जानवरों व दैनिक जीवन की घटनाओं के चित्रों से ढक देते थे। इनके इस गुण को विकसित करने के लिए रवि वर्मा को उनके मामा के पास भेज दिया गया।

रवि वर्मा के मामा राजा राजवर्मा तंजोर के राजा के कलाकार थे। कहते हैं कि एक बार राजा राजवर्मा तंजोर के महल में चित्र बना रहे थे। बीच में ही राजा राजवर्मा को कुछ समय के लिए कहीं जाना पड़ा। जब लौटकर आए तो देखा कि भांजे रवि वर्मा ने उस चित्र को पूरा कर उसमें रंग भी भर दिए थे। इस घटना से रवि वर्मा के मामा रवि की प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए तथा रवि को चित्रकला में विधिवत प्रशिक्षित करने में

अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। मरुमाक्काथायम प्रथा के अनुसार, मामा का नाम रवि वर्मा नाम के आगे जुड़ने से वे राजा रविवर्मा बने। ट्रावन्कोर के तत्कालीन महाराजा अयिल्यम थिरूनल ने भी राजा रवि वर्मा को संरक्षण प्रदान किया।

दरबारी चित्रकार रामास्वामी नायकर से जलरंग चित्रकारी के मूल तत्त्व सीखे। राजप्रासाद के संपन्न पुस्तकालय द्वारा उपलब्ध मलयालम और संस्कृत के साहित्य और कला का एकाग्रता से अध्ययन किया। देश का भ्रमण कर उसे समझा। राजा रवि वर्मा का अध्ययन इतना प्रभावी था कि वे संस्कृत के छंद भी रचने लगे।

उस समय विदेशों में तैलीय रंगों का प्रयोग होने लगा था। तैलीय रंगों का प्रयोग सीखने के लिए राजा रवि वर्मा ने ब्रिटिश चित्रकार थियोडोर जेनेसन से सम्पर्क किया। थियोडोर जेनेसन राज दरबार में पोर्ट्रेट बनाने के लिए त्रावणकोर से आए हुए थे। राजा रवि वर्मा के काम को देख कर थियोडोर उनकी प्रतिभा को पहचान चुका था। थियोडोर को लगा कि प्रतिभाशाली युवक रवि वर्मा को तैलरंग का उपयोग सिखाना स्वयं की प्रतिष्ठा कम कराना सिद्ध होगा। थियोडोर ने सिखाने से मना कर दिया। राजा रविवर्मा थियोडोर जेनेसन को कार्य करते देखते रहते तथा अलग से अभ्यास भी करते रहे। महाराजा की मदद से लंदन से मंगाई गई पश्चिमी चित्रकला पत्रिकाओं से यूरोपीय तकनीक और चित्रभाषा को समझने का प्रयास किया।

महाभारत के एकलव्य की कहानी एक बार फिर साकार हुई। गुरु के सिखाए बिना ही राजा रविवर्मा कुछ समय में तैल रंगों के प्रयोग में माहिर हो गए। राजा रवि वर्मा को बड़ौदा के सयाजीराव महाराज से भी मदद मिलने लगी थी। राजा रवि वर्मा तैल चित्रों के माध्यम से विश्व के श्रेष्ठ चित्रकारों में गिने जाने लगे। राजा रवि वर्मा सुबह चार बजे उठ कर अपने चित्र बनाते थे। प्रकाश और छाया के सूक्ष्म अध्ययन और आकलन के लिए यह समय सर्वाधिक उपयुक्त लगता है। विशेषज्ञों का मानना है कि तैल रंगों में सजीव प्रतिकृतियाँ बनाने वाला राजा रवि वर्मा जैसा कोई दूसरा कलाकार नहीं हुआ है।

घर-घर में भगवान

राजा रवि वर्मा ने भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन कर शांतनु और मत्स्यगंधा, नल-दमयंती, श्रीकृष्ण-देवकी, अर्जुन-सुभद्रा, विश्वामित्र-मेनका जैसे चित्र बनाए। रवि वर्मा ने स्त्री देह का भारतीय कलादृष्टि से प्रतिभाशाली प्रयोगकर एक नए सौंदर्यशास्त्र को रचा। रवि वर्मा के चित्रों में ईश्वर मानवीय रूप में होते हुए भी मानव से कुछ ऊपर लगता है। चित्र में पर्यावरण का सजीव चित्रण भी महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

राजा रवि ने सांस्कृतिक चित्रों के साथ सामाजिक चित्र भी बनाए। रवि वर्मा के बनाए शिवाजी और बाल गंगाधर तिलक के चित्र जनता में इतने लोकप्रिय हुए कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन के प्रसार का माध्यम बन गए। अंग्रेजों को लगने लगा था, राजा रवि वर्मा पराधीन मुल्क के अतीत के प्रति लोगों में जोश पैदा कर रहा है। अंग्रेज सरकार इनके चित्रों को स्वदेशी आंदोलन को कला जन्य समर्थन मानने लगी थी।

उपेक्षा के शिकार

उस समय के कलाकार और कला समीक्षकों ने रवि वर्मा के काम को स्वीकृति प्रदान नहीं की। वे निर्ममता के साथ रवि वर्मा के कार्य को नकारते रहे। इससे रवि वर्मा विचलित हुए मगर जनस्वीकृति ने उनके उत्साह को मरने नहीं दिया। जनता ने राजा रवि वर्मा को राजमुकुट धारण किए बिना ही राजा बना दिया। उनकी दो-दो पोतियाँ राजघराने में ब्याह कर सचमुच रानियाँ बन गई। राजा रवि वर्मा ने अपने चित्रों में अपनी पसन्द की महिलाओं की मुखाकृति का प्रयोग कर उन्हें अमर कर दिया। मानना है कि रावण द्वारा सीता के हरण के चित्रण में रवि वर्मा ने सीता की मुखाकृति में अपनी प्रिय पोती की छवि ली थी। सरस्वती और लक्ष्मी के चित्रों में उन्होंने सुगंधी नामक स्त्री मॉडल की मुखाकृति और छवियों का आश्रय लिया। देवियों के चित्रण में लम्बी साड़ी का उपयोग राजा रवि वर्मा की मौलिकता का प्रमाण है।

यह सच है कि भारतीय संस्कृति निराकार ईश्वर की उपासक रही है मगर आस्था को मजबूत करने हेतु चित्र या मूर्ति का सहारा लेने का विरोध नहीं कर इसे निराकार की उपासना का ही एक चरण माना गया है। इस दृष्टि से रविवर्मा ने देवी-देवताओं के चित्र बना कर तथा बाद में उनका प्रकाशन कर करोड़ों लोगों की आस्था को मजबूत आधार प्रदान किया। जिन लोगों का मंदिर जाना संभव नहीं होता उनको घर में ही मंदिर प्रदान कर दिया। दीपावली पर हर घर में लक्ष्मी के मंदिर की स्थापना इसका उदाहरण है।

राजा रवि वर्मा का कार्य इतनी उच्च कोटि का था कि ब्रिटिश सरकार को उनको कैसर-ए-हिन्द उपाधि का सम्मान देना ही पड़ा। कई संस्थान भी उनके नाम पर स्थापित किए गए। सन 2013 में बुद्ध ग्रह पर एक क्रेटर का नाम उनके नाम पर ही रखा गया। उम्र के आखिरी वर्षों में राजा रवि वर्मा अपनी ख्याति के चरम पर थे। उन्हें एशिया का रेम्ब्राँ कहा जाने लगा था। उनके एक पुत्र रामा वर्मा ने जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुंबई, में पढ़ाई की थी तथा पिता के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। रवि वर्मा निरन्तर अपने कार्य को ऊँचाई पर ले जाने का प्रयास करते रहे। दिन-रात काम करते-करते ही एक दिन काल के गाल में समा गए। आज यह कहा जा सकता है कि राजा रवि वर्मा के बनाए चित्र ही उनका असली स्मारक हैं। जबतक भारतीय संस्कृति है राजा रवि वर्मा भी रहेंगे। ❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

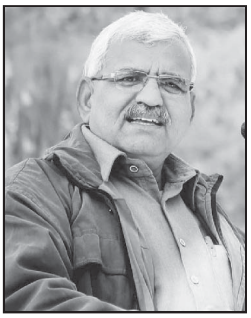

''बिना विचार किए, बिना तर्क के, बिना प्रमाण के किसी बात को स्वीकार करना रुढ़ि है, अंध विश्वास है पर किसी बात को बिना परीक्षण के अस्वीकार करना तो उससे भी बड़ा अंध विश्वास है। वैज्ञानिक तो वह है जो प्रत्येक मत को स्वीकार कर कसौटी पर कसता है तथा असंगत होने पर अस्वीकार भी कर देता है। कल प्रगत कसौटी-यंत्र मिला तो परिणाम भी परिवर्तित व परिष्कृत हो सकता है या नहीं? तब जिसे वैज्ञानिक ज्ञान कह रहे हैं, वह भी अंतिम, निरपेक्ष ज्ञान है क्या? साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में कसौटी पर कसने की योग्यता, तज्ञता होती है क्या? तब बड़ों ने अपने अनुभव व परम्परा से प्राप्त ज्ञान के आधार पर जो कहा है उसे स्वीकार करना चाहिए।''

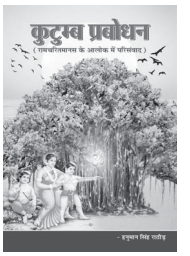

वर्तमान भारतीय समाज जीवन-दर्शन में कई परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। यह परिवर्तन वैश्विक घटनाओं, तकनीक के बढ़ते प्रसार तथा टी.वी., इण्टरनेट व मोबाइल के अमर्यादित उपयोग के कारण है, ऐसा मानने में कोई हर्ज नहीं है। इन बदली परिस्थितियों में परिवार में बालकों के साथ अन्य सदस्यों द्वारा समय बिताने के विचार को कैसे पुनर्स्थापित किया जाए, इस उद्देश्य से विद्वान मनीषी एवं समाज चिंतक श्री हनुमान सिंह राठौड़ ने एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'कुटुम्ब प्रबोधन' का सर्जन किया है जिसे अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने प्रकाशित किया है।

श्री हनुमान सिंह जी ने 'रामचरित मानस' के आलोक में इसके लोकप्रिय प्रसंगों को सरस संवाद-शैली में पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है जिसके मूल में भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा तथा स्वस्थ समाज की अवधारणा है। आज इस बात की महती आवश्यकता है कि न केवल परिवार के सदस्यों में परस्पर सम्मान और सद्भाव बढ़े बल्कि अपने आस-पास रहने वाले लोगों के प्रति भी संवेदनापूर्ण भावना का विकास हो। 'कुटुम्ब प्रबोधन' में विद्वान लेखक श्री हनुमान सिंह ने पन्द्रह अध्यायों में 'राम-कथा' के भिन्न-भिन्न प्रसंगों से पाठक-परिवार के सभी छोटे-बड़े सदस्यों के विचार एवं व्यवहार का परिष्कार करने के उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस पुस्तक की नवीन शैली और अभिव्यक्ति-कौशल ने कई पाठकों को अपनी प्रतिक्रियाएँ भेजने को बाध्य किया है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक मंथन मासिक में सभी अध्यायों को श्रृंखलापूर्वक प्रकाशित करने की योजना बनाई है। इस अंक में पुस्तक का ***प्रथम अध्याय 'अभिवादन'*** *प्रकाशित किया जा रहा है - सम्पादक।*

अभिवादन

भरत बेटा! क्या दादी को प्रणाम किया?

''माँ, उठते ही नित्य आप बड़ों को प्रणाम करने के लिए कहती हैं। विद्यालय में प्रत्येक कालांश में गुरुजी के आने पर खड़े होकर अभिवादन को कहते हैं। आखिर आप सब क्यों चाहते हैं कि छोटे, बड़ों को प्रणाम करें? बड़ी आयु वाले छोटों को प्रणाम करें, यह परम्परा क्यों नहीं है? बड़ों के आने पर हम ही क्यों खड़े हों?''

''क्या बेकार के प्रश्न करता है। माँ कह रही है तो मान क्यों नहीं लेता।'' बड़ी बहन ने तमककर कहा।

''नहीं, किसी ने कहा इसलिए कैसे मान लें। यह तो रूढ़िवाद है, बिना कारण मानना तो अंध विश्वास है। हमारे गुरुजी कहते हैं यह विज्ञान का युग है।'' भरत बोला

''बिल्कुल ठीक। बिना विचार किए, बिना तर्क के, बिना प्रमाण के किसी बात को स्वीकार करना रुढ़ि है, अंध विश्वास है पर किसी बात को बिना परीक्षण के अस्वीकार करना तो उससे भी बड़ा अंध विश्वास है। वैज्ञानिक तो वह है जो प्रत्येक मत को स्वीकार कर कसौटी पर कसता है तथा असंगत होने पर अस्वीकार भी कर देता है। कल प्रगत कसौटी-यंत्र मिला तो परिणाम भी परिवर्तित व परिष्कृत हो सकता है या नहीं? तब जिसे वैज्ञानिक ज्ञान कह रहे हैं, वह भी अंतिम, निरपेक्ष ज्ञान है क्या? साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में कसौटी पर कसने की योग्यता, तज्ञता होती है क्या? तब बड़ों ने अपने अनुभव व परम्परा से प्राप्त ज्ञान के आधार पर जो कहा है उसे स्वीकार करना चाहिए।'' माँ ने भरत और बहिन के बीच हस्तक्षेप किया।

''नहीं! यह तो अवैज्ञानिक है। प्रयोग या तर्क द्वारा सिद्ध होना ही चाहिए।'' भरत ने कहा

माँ हँसते हुए बोली- ''तुम मोबाइल के निर्माण की तकनीकी को जानते नहीं पर विश्वास करते हो क्योंकि इसके तकनीकी विशेषज्ञों ने वैसा ही कहा है, क्यों करते हो कि नहीं?''

''हाँ, करता हूँ। क्योंकि यह बात वैज्ञानिकों ने कही है।''

''तो प्राचीन काल में भी वैज्ञानिक थे, उन्हें हम ऋषि कहते हैं। उन्होंने जो कहा उसे भी वैज्ञानिक तथ्य मानना चाहिए।''

''उन्होंने क्या कहा है, बताइये ना माँ।'' भरत ने उत्सुकता से पूछा।

माँ ने कहा,''अभी विद्यालय जाओ, सायंकाल जब हम संध्या आरती के बाद स्वाध्याय करेंगे तब इस विषय पर आगे चर्चा करेंगे।''

भरत के मन में दिन भर उत्सुकता बनी रही। सायंकाल संध्या-आरती के बाद जब सब परिवार जन स्वाध्याय के लिए बैठे तो माँ ने मनुस्मृति के अध्याय-2 के 120वें श्लोक का सस्वर पाठ किया -

उर्ध्व प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते।।

सबने इसे दोहराया। इसके बाद माँ ने इसका अर्थ बताते हुए कहा- 'स्थविरे आयति' अर्थात् विद्या, आयु, पद आदि में बड़ों के आने पर 'यूनः प्राणाः' अर्थात् छोटों के प्राण 'उत्क्रामन्ति' ऊपर को उठने लगते हैं यानि प्राणों में हलचल, घबराहट सी होने लगती है। गुरुजी कक्ष में प्रवेश करते हैं तो होता है कि नहीं और झूले में नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे जाते समय प्राणों की इस हलचल को अनुभव किया कि नहीं? तो श्लोक कहता है कि किन्तु 'प्रत्युत्थान-अभिवादाभ्याम्' उठने और नमस्कार करने से 'पुनःतान् प्रतिपद्यते' अर्थात् फिर से प्राणों की सामान्य, स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त कर लेता है।''

''लेकिन माँ, ऐसा भाव तो अपरिचित या जिसकी विद्वता का हमें पहले से परिचय होता है, उसी के प्रति होता है। प्रत्येक बड़े को प्रणाम क्यों करना चाहिए? केवल उत्क्रमणित प्राणों को सम्यक करना इतना ही उद्देश्य अभिवादन का है क्या?'' अनंत बोला।

''नहीं, इतना ही उद्देश्य नहीं है। मनुस्मृति का ही इससे अगला श्लोक है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

इसका अर्थ है -''अभिवादन करने का जिसका स्वभाव है और वृद्ध पुरुषों का जो नित्य सेवन करता है, उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल, इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है।''

''इस श्लोक में अभिवादन के साथ वृद्धों के सामीप्य का भी संकेत है। वृद्ध किसे कहते हैं?'' माँ ने प्रश्न किया।

''बहुत सरल है। वृद्ध यानि दादा जी।'' शिवम् चहककर बोला।

''हाँ, दादाजी वृद्ध हैं। ये आयु वृद्ध हैं। एक ज्ञान वृद्ध होता है। इसका सम्बन्ध ज्ञान से है आयु से नहीं। अच्छा! तुम्हें सात चिरजीवियों के नाम याद रहे क्या?'' माँ ने प्रश्न किया।

''हाँ माँ, याद है आपने एक श्लोक बोला था उसमें अश्वत्थामा, बलि, वेद व्यास, हनुमान, कृपाचार्य, विभीषण, परशुराम इन सात के नाम आये थे। किन्तु आपने सम्भवतया मार्कण्डेय ऋषि का भी नाम बताया था जो आठवें चिरजीवी हुए।'' अनंत ने याद करते हुए कहा।

''तो फिर तुम्हें वह कथा भी याद होगी जो मैंने बतायी थी कि मार्कण्डेय का अकाल मृत्यु योग अभिवादन के स्वभाव से ही टला तथा वे चिरजीवी हुए।'' माँ ने पूरक प्रश्न किया।

''हाँ, वह कथा स्मरण है। मैंने विद्यालय में भी सुनायी थी। वे पिता की आज्ञा से सभी को प्रणाम करते थे और इसी क्रम में एक बार सप्तऋषियों से अभिवादन के बदले प्राप्त आशीर्वाद से चिरजीवी हो गए।'' भरत उत्साह पूर्वक बोला।

''वृद्धों को अभिवादन करने से हममें विनम्रता आती है और वे आशीर्वाद देते हैं- 'आयुष्मान् भव''चिरंजीवी होवो'। तो उनका आशीर्वाद फलवती होता है।'' माँ ने क्षण भर रुककर पुनः कथन प्रारम्भ किया-

''विद्या से विनय आती है यह सत्य है पर विनयशील को अधिक विद्या प्राप्त होती है यह भी तथ्य है। अभिवादन और वृद्धों के सान्निध्य से उनके अनुभवों का ज्ञान हमें स्वतः ही मिल जाता है, अतः विद्या बढ़ती है। विनम्रता का अर्थ ही यह है कि उसमें गुण ग्रहण करने की स्वाभाविक वृत्ति है। ब्रह्मचारी द्वारा 'समित्पाणि' अर्थात् हाथ में समिधा लेकर विद्यादान के लिए गुरु से याचना का प्रावधान था। अर्थात् स्वयं को समिधा रूप में अर्पित करने की सिद्धता विद्या ग्रहण की पात्रता विकसित करती है।''

''आप ठीक कहती हैं माँ। हमारे गुरुजी भी हमें स्नेह करते हैं और हम किसी भी समय उनसे कुछ पूछते हैं तो बताते हैं। टोनी शैतानी करता है अतः सबसे डाँट ही खाता रहता है।'' भरत ने सोचते हुए कहा।

''अभिवादन से सभी का आदर करने का स्वभाव बनता है। तुम्हें शाखा में इसीलिए सबके नाम के साथ 'जी' लगाकर बोलने को कहते हैं। आदर करने के स्वभाव से विनम्रता के साथ सुशीलता तथा सेवा का भाव भी बढ़ता है। वृद्धों की चौपाल मोहल्ले की सब घटनाओं, चर्चाओं की समीक्षा का केन्द्र होती है। वहाँ आपकी विनम्रता का बखान होगा तो स्वतः यश बढ़ेगा कि नहीं? वृद्धों की 'माउथ पब्लिसिटी' (मुखाग्र प्रचार) के आगे दूरदर्शन भी धरा रह जाता है। और अन्त में कीर्तिवान पुरुष के मित्र बढ़ते हैं। वृद्धों का सम्बल व समविचारी समवयस्कों की एकमत टोली का अर्थ है- बल में वृद्धि। संजय ने गीता में कहा है कि सत्य, धर्म की जय के लिये पार्थ का धनुर्बल और पार्थसारथि का ज्ञानबल चाहिए। ठीक है आज चर्चा यहीं समाप्त करते हैं। सोने से पूर्व इस सब पर विचार, चिंतन-मनन करना और तद्नुसार अपना आचरण बनाने का प्रयास करना।'' चलिए कल्याण मंत्र से समापन करते हैं-

''सर्वे भवन्तु सुखिनः .....।''
ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः।।

क्रमशः ...

भगिनी निवेदिता के शिक्षा-विचार

❑ उमेश कुमार चौरसिया

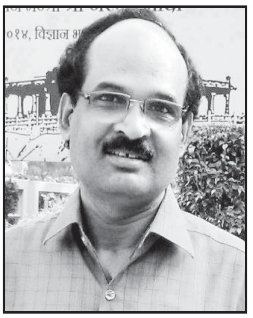

'राष्ट्रीय शिक्षा' के निहितार्थ को स्पष्ट करते हुए भगिनी ने लिखा है कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रथमतः व प्रमुखतः राष्ट्रीय आदर्शवाद की शिक्षा है। हमें यह याद रखना होगा कि शिक्षा का उद्देश्य हमारी सहानुभूति व बुद्धि को बंधन मुक्त करना है। यह कार्य विदेशी उपायों से सम्पादित नहीं हो सकता। अधिकाधिक लोगों को अत्यधिक सहज एवं प्रभावी रूप से मुक्त करने के लिए परिचित आदर्शों व स्वरूपों का चयन आवश्यक है। हर एक मामले में प्रगति की पूर्ण निरन्तरता आवश्यक है ताकि प्रारंभिक अनुभवों के तत्वों में तीव्र विसंगति नहीं हो। ऐसी विसंगति से वैचारिक संभ्रम का जन्म होता है और यह संभ्रम शैक्षणिक अव्यवस्था का जनक है। अतः एक राष्ट्रीय शिक्षा परिचित तत्वों से निर्मित होनी चाहिये।

स्वामी विवेकानन्द की मानस पुत्री भगिनी निवेदिता का जीवन एक महत् लक्ष्य के प्रति सर्वतोभावेन समर्पण आदेशोन्मुख गाथा है। वे एक शिक्षिका बनकर आयीं परन्तु सेविका बनकर अपने गुरु विवेकानन्द की इस पवित्र मातृभूमि के लिए स्वयं का कण-कण समर्पित कर दिया। मार्गरिट एलिजाबेथ नोबुल से निवेदिता (समर्पिता) बनीं भगिनी ने मूलतः शिक्षिका के गुरुतर-भार का दायित्व ग्रहण करने हेतु ही भारत भूमि पर पदार्पण किया था। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देते हुए भगिनी ने 'निवेदिता पाठशाला' के माध्यम से विशेष प्रभावी शिक्षा पद्धति का प्रारंभ किया था। उनसे यह पूछे जाने पर कि वे कौन हैं, तो उनका उत्तर होता था कि वे एक शिक्षिका हैं। यह उपयुक्त उत्तर था क्योंकि भारत में बालिकाओं को अक्षर ज्ञान कराने से प्रारंभ हुए उनके जीवन की परिणति सभी को राष्ट्रीयता, प्रेम एवं सेवा का पाठ पढ़ाने में हुई।

भारतीय समाज और उसकी आवश्यकताओं पर भगिनी ने गहन चिंतन किया था। वे उसके वर्तमान से क्षुब्ध और भविष्य के प्रति आशान्वित थीं। राष्ट्र को सतेज बनाने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपाय था 'शिक्षा'। उन्होंने अपनी पुस्तक 'Hints on national education in India.' में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकताओं का उत्कृष्ट विवेचन किया गया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षित युवा लोगों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए अनिवार्य सेवा करने का आह्वान किया गया है। इसमें संकलित लेखों में जिन बातों पर बल दिया गया है, वे हैं - (1) शिक्षा के स्वरूप को ऐसा बनाया जाए, जिससे भारतीय जीवन को भली-भांति समझा जा सके। (2) इनमें ज्ञानार्जन, सामान्य सामाजिक अवधारणाओं तथा पूर्ण मानवीय विकास के लिये मानसिक तैयारी के रूप में शिक्षा के तीन तत्त्वों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। (3) बुद्धि के साथ ही मनोवेगों के प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। (4) राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की उपयोगिता को रेखांकित किया गया है। (5) राष्ट्रीय इतिहास व भूगोल पर आधारित राष्ट्रीय आदर्शों से शिक्षा को प्रेरित करने का आह्वान किया गया है। भगिनी ने इसमें विदेशी संस्कृति के भ्रामक उन्माद के बारे में भी लिखा है। इसी क्रम में 'Suggestions for Indian vivekananda Socities, Notes on historical Research, The place of Kinder garten in Indian schools' आदि ज्ञानवर्द्धक लेख भी है।

शिक्षा सिद्धान्त की आत्मा की आवश्यकता-भगिनी निवेदिता के अनुसार हमारे शिक्षा सिद्धान्त की एक आत्मा होना नितान्त आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा एकता का निर्माण करना है। हमें बालक को उसकी सम्पूर्णता में देखना होगा। जब तक हम भावनाओं और अभिरुचि 'feelings and choice' को प्रशिक्षित नहीं करते, व्यक्ति अशिक्षित ही रहेगा। इसके अभाव में वह कतिपय बौद्धिक बाजीगरी के लिए ही सज्जित हो सकता है, जिसकी उसे जानकारी करायी जाती है। इस बाजीगरी के द्वारा वह अपनी रोटी-रोजी कमा सकता है, किंतु न तो हृदयतंत्री को झंकृत कर सकता है, न ही जीवन का संचार कर सकता है। उसे किसी भी सूरत में मनुष्य नहीं, अधिक से अधिक अनुकरण प्रवीण वानर कहा जा सकता है। चतुर दिखने के लिए, मनुष्य बनने के सदुद्देश्य के बजाय केवल रोटी-रोजी कमाने के प्रयोजन से, पढ़ाई करने का अभिप्राय होगा, इस संकट में फँसना। इसलिए बालक को दी जाने वाली प्रत्येक जानकारी ऐसी होनी चाहिए जो उसके हृदय को छू सके।

भावनाओं के प्रशिक्षण से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई बात नहीं है। उदात्त भावानुभूति एवं उत्कृष्ट व गरिमामय अभिरुचि आत्मिक ऊर्जा के विकास के लिए शैक्षणिक प्रक्रिया के किसी अन्य पहलू की अपेक्षा हजार गुना महत्त्वपूर्ण है। जिस बालक में यह शक्ति विद्यमान एवं प्रबल है वह किन्हीं भी परिस्थितियों में सर्वोत्तम-संभाव्य कार्य करने में सक्षम होगा। इस समय बहुत कम माता-पिता व शिक्षक संवेदनशीलता के संवर्धन की इस आवश्यकता व महत्ता के बारे में

सोचते हैं। शाला में जाने का औचित्य तभी है, जब इससे छात्र का अन्त:करण सद्विचारों व सत्कार्यों की प्रेरणा से, बलिदान की उदात्त भावना से जगमग हो और यह तभी संभव है जब छात्र को जन, देश एवं धर्म की भलाई करने में सक्षम बनाया जाए।

हमें अपने बच्चों को राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत करना है । हमें उनसे भारत के लिए बलिदान, भारत के लिए भक्ति की माँग करनी है। हमें उन्हें शौर्य-पूर्ण ढँग से सोचना सिखाना है। उनका लालन-पालन इस ढँग से करना है कि वे अपने देश और देशवासियों के प्रति निष्ठावान बनें। उनमें यह भावना विकसित होनी चाहिए कि मुझे 'मनुष्य' बनने के लिए, दूसरों की मदद करने में सक्षम बनने के लिए पढ़ना है।

राष्ट्रीय शिक्षा - 'राष्ट्रीय शिक्षा' के निहितार्थ को स्पष्ट करते हुए भगिनी ने लिखा है कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रथमत: व प्रमुखत: राष्ट्रीय आदर्शवाद की शिक्षा है। हमें यह याद रखना होगा कि शिक्षा का उद्देश्य हमारी सहानुभूति व बुद्धि को बंधन मुक्त करना है। यह कार्य विदेशी उपायों से सम्पादित नहीं हो सकता। अधिकाधिक लोगों को अत्यधिक सहज एवं प्रभावी रूप से मुक्त करने के लिए परिचित आदर्शों व स्वरूपों का चयन आवश्यक है। हर एक मामले में प्रगति की पूर्ण निरन्तरता आवश्यक है ताकि प्रारंभिक अनुभवों के तत्त्वों में तीव्र विसंगति नहीं हो। ऐसी विसंगति से वैचारिक संभ्रम का जन्म होता है और यह संभ्रम शैक्षणिक अव्यवस्था का जनक है। अत: एक राष्ट्रीय शिक्षा परिचित तत्त्वों से निर्मित होनी चाहिये। लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने वाले आदर्शों को पहले हमारे अपने अतीत द्वारा विकसित प्रतीकों के रूप में होना चाहिए। हमारी कल्पना पहले हमारी अपनी वीर-गाथाओं पर आधारित होनी चाहिए। हमारी आशा का ताना-बाना हमारे इतिहास से बुना जाना चाहिए । ज्ञात से अज्ञात की ओर, सरल से कठिन की ओर जाना प्रत्येक शिक्षक का ध्येय और प्रत्येक पाठ का

नियम होना चाहिये। लक्ष्य परिचित वस्तु नहीं, ज्ञान है, प्रशिक्षित मनीषा ध्येय है। जो शिक्षा परिचित बातों पर ही अटक जाती है, वह मुक्ति के बजाय बंधन बन जाती है। वह वास्तविकता नहीं, प्रहसन होती है।

स्त्री शिक्षा - अतिभौतिकता पर अधिक जोर देने वाली शिक्षा को भारतीय महिलाओं के लिए अनुपयुक्त ठहराते हुए भगिनी ने कहा- विनय को तिरोहित और कोमलता को समाप्त करने वाली केवल बौद्धिक शिक्षा सच्चे अर्थों में शिक्षा नहीं है। इन गुणों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन व आधुनिक सभ्यताएँ भले ही अलग-अलग रूपों में हुई हो किंतु दोनों के लिए उनकी महत्ता एक सी है। सही अर्थों में शिक्षा वही है जो चरित्र के विकास व सुदृढ़ीकरण पर विशेष रूप से ध्यान दे तथा बौद्धिक उपलब्धियों को गौण स्थान दे। अत: भारतीय महिलाओं के लिए जिस प्रश्न को हल किया जाना है, वह है शिक्षा का वह रूप जो आत्मा व मस्तिष्क के गुणों मे सामंजस्य बनाये रखकर दोनों का विकास कर सके।

भारतीय महिलाओं की दृष्टि से ऐसी कोई शिक्षा उपयुक्त नहीं है जिसका प्रारंभ व अंत भारत के साहित्य व शौर्यपूर्ण इतिहास में समाहित नारीत्व के राष्ट्रीय आदर्शों के उन्नयन में नहीं होता। पत्नीत्व से पहले नारीत्व, नारीत्व से पहले मानवता ऐसी बात है जो प्रत्येक अवस्था में बालिका शिक्षण का ध्येय होना चाहिये।

भगिनी के अनुसार घर में सिखाए जाने वाले आदर्शों को पुष्ट करना पाठशाला की और पाठशाला में दी जाने वाली शिक्षा को सबलता प्रदान करना घर की सर्वोच्च अभिलाषा होनी चाहिये। इस लक्ष्य से दूर हटने की अपेक्षा घनीभूत अज्ञानता को उन्होंने बेहतर माना है। किसी की आलोचना करना या हतोत्साहित करना कभी शिक्षा का साधन नहीं हो सकते। अपने विद्यार्थियों में उदात्त गुणों का दर्शन करने वाला व्यक्ति ही प्रभावी शिक्षक बन सकता है। भारतीय जीवन की महानता की स्व-अनुभूति से ही बाह्य संसार को हम महानता का आभास करा सकते हैं। अपने लोगों से प्रेम करके ही हम मानवता से प्रेम करना सीख सकते हैं और भारतीय महिला के भविष्य में दृढ़ निष्ठा से ही पुरुषों को महान् भविष्य का स्वप्न साकार करने के योग्य बनाया जा सकता है।

नि:संदेह भगिनी निवेदिता ने शिक्षा जैसे आधारभूत महत्त्व के विषय का मनौवैज्ञानिक, नैतिक व व्यावहारिक दृष्टि से तलस्पर्शी विवेचन किया है। जिस जटिल प्रश्न से आज भी भारत जूझ रहा है, उसके हल के अमूल्य सुझाव स्वामीजी की इस मानसपुत्री के लेखन में निहित है। गंगा के किनारे भी यदि हम प्यासे रहें तो हमारी बुद्धि की बलिहारी है। भारत में शिक्षा के यथोचित स्वरूप की सही दृष्टि जाननी हो तो भगिनी निवेदिता के ज्ञानवर्द्धक-सदुपयोगी लेखों को पढ़ना चाहिये। भगिनी ने उस समय भारत की सामाजिक परिस्थितियों को जितनी गहराई से समझकर शिक्षा के सार्थक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, वह आज भी उतना ही सटीक व महत्त्वपूर्ण है। ❑

(सदस्य 'राजस्थान साहित्य अकादमी', उपाध्यक्ष, अ.भा.साहित्य परिषद् चित्तौड़ प्रान्त)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा, रेशिमबाग नागपुर
फाल्गुन कृष्ण 8-9 युगाब्द 5119 (9-11 मार्च, 2018) को पारित प्रस्ताव

भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन की आवश्यकता

अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का यह मत है कि भाषा किसी भी व्यक्ति एवं समाज की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण घटक तथा उसकी संस्कृति की सजीव संवाहिका होती है। देश में प्रचलित विविध भाषाएँ व बोलियाँ हमारी संस्कृति, उदात्त परंपराओं, उत्कृष्ट ज्ञान एवं विपुल साहित्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के साथ ही वैचारिक नवसृजन हेतु भी परम आवश्यक हैं। विविध भाषाओं में उपलब्ध लिखित साहित्य की अपेक्षा कई गुना अधिक ज्ञान गीतों, लोकोक्तियों तथा लोक कथाओं आदि की मौखिक परंपरा के रूप में होता है।

आज विविध भारतीय भाषाओं व बोलियों के चलन तथा उपयोग में आ रही कमी, उनके शब्दों का विलोपन व विदेशी भाषाओं के शब्दों से प्रतिस्थापन एक गम्भीर चुनौती बन कर उभर रहा है। आज अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और कई अन्य का अस्तित्व संकट में है। अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का यह मानना है कि देश की विविध भाषाओं तथा बोलियों के संरक्षण और संवर्द्धन के लिये सरकारों, अन्य नीति निर्धारकों और स्वैच्छिक संगठनों सहित समस्त समाज को सभी सम्भव प्रयास करने चाहिये। इस हेतु निम्नांकित प्रयास विशेष रूप से करणीय हैं –

1. देश भर में प्राथमिक शिक्षण मातृभाषा या अन्य किसी भारतीय भाषा में ही होना चाहिये। इस हेतु अभिभावक अपना मानस बनायें तथा सरकारें इस दिशा में उचित नीतियों का निर्माण कर आवश्यक प्रावधान करें।
2. तकनीकी और आयुर्विज्ञान सहित उच्च शिक्षा के स्तर पर सभी संकायों में शिक्षण, पाठ्य सामग्री तथा परीक्षा का विकल्प भारतीय भाषाओं में भी सुलभ कराया जाना आवश्यक है।
3. राष्ट्रीय पात्रता व प्रवेश परीक्षा (नीट) एवं संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षाएँ भारतीय भाषाओं में भी लेनी प्रारम्भ की गयी हैं, यह पहल स्वागत योग्य है। इसके साथ ही अन्य प्रवेश एवं प्रतियोगी परीक्षाएँ, जो अभी भारतीय भाषाओं में आयोजित नहीं की जा रही हैं, उनमें भी यह विकल्प सुलभ कराया जाना चाहिये।
4. सभी शासकीय तथा न्यायिक कार्यों में भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। इसके साथ ही शासकीय व निजी क्षेत्रों में नियुक्तियों, पदोन्नतियों तथा सभी प्रकार के कामकाज में अंग्रेजी भाषा की प्राथमिकता न रखते हुये भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।
5. स्वयंसेवकों सहित समस्त समाज को अपने पारिवारिक जीवन में वार्तालाप तथा दैनन्दिन व्यवहार में मातृभाषा को प्राथमिकता देनी चाहिये। इन भाषाओं तथा बोलियों के साहित्य-संग्रह व पठन-पाठन की परम्परा का विकास होना चाहिये। साथ ही इनके नाटकों, संगीत, लोककलाओं आदि को भी प्रोत्साहन देना चाहिये।
6. पारंपरिक रूप से भारत में भाषाएँ समाज को जोड़ने का साधन रही हैं। अतः सभी को अपनी मातृभाषा का स्वाभिमान रखते हुए अन्य सभी भाषाओं के प्रति सम्मान का भाव रखना चाहिये।
7. केन्द्र व राज्य सरकारों को सभी भारतीय भाषाओं, बोलियों तथा लिपियों के संरक्षण और संवर्द्धन हेतु प्रभावी प्रयास करने चाहिये।

अ. भा. प्रतिनिधि सभा बहुविध ज्ञान को अर्जित करने हेतु विश्व की विभिन्न भाषाओं को सीखने की समर्थक है। लेकिन, प्रतिनिधि सभा भारत जैसे बहुभाषी देश में हमारी संस्कृति की संवाहिका, सभी भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन को परम आवश्यक मानती है। प्रतिनिधि सभा सरकारों, स्वैच्छिक संगठनों, जनसंचार माध्यमों, पंथ-संप्रदायों के संगठनों, शिक्षण संस्थाओं तथा प्रबुद्ध वर्ग सहित संपूर्ण समाज से आवाहन करती है कि हमारे दैनन्दिन जीवन में भारतीय भाषाओं के उपयोग एवं उनके व्याकरण, शब्द चयन और लिपि में परिशुद्धता सुनिश्चित करते हुये उनके संवर्द्धन का हर सम्भव प्रयास करें।

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ भचाऊ तहसील (जिला कच्छ) में रक्तदान शिविर आयोजित

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ भचाऊ तहसील की ओर से 'शहीद दिवस' के अवसर पर 'राम नवमी' के दिन रक्तदान शिविर का आयोजन हुआ।

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ भचाऊ एवं सीमा जनकल्याण समिति पूर्व कच्छ एवं राजाभाई ब्लड बैंक गांधीधाम के संयुक्त रूप से आयोजित इस शिविर में 250 से ज्यादा शिक्षक बंधु/भगिनी उपस्थित रहे। जिनमें से 97 शिक्षकों ने रक्तदान किया।

इस कार्यक्रम में उपस्थित राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के प्रदेश अध्यक्ष घनश्याम भाई पटेल ने शिक्षकों को स्वकेन्द्रित न होकर समाज केन्द्रित बनने का आह्वान किया था।

इस अवसर पर कच्छ-मोरबी सांसद विनोदभाई चावडा,गांधीधाम-भचाऊ विधायक मालतिबहेन महेश्वरी, गुजरात सीमा श्रद्धा जागरण प्रमुख दिनेशभाई गज्जर, कच्छ जिला पंचायत अध्यक्ष कौशल्या बहन माधापरिया, कच्छ जिला प्राथमिक शिक्षा अधिकारी संजयभाई परमार आदि महानुभाव उपस्थित रहे। कार्यक्रम को सफल बनाने में भचाऊ तालुका राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ भचाऊ के अध्यक्ष लाभुगिरी गोस्वामी,मंत्री विजयभाई पंड्या ने अहम भूमिका निभाई थी।

जिला अध्यक्ष खेतशिभाई गजरा एवं संगठन मंत्री रमेशभाई गागल ने सभी को सम्बोधित किया था।

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की विभिन्न इकाइयों द्वारा नव विक्रम सम्वत्सर मनाया

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ(राष्ट्रीय) की विभिन्न इकाइयों द्वारा नव विक्रम सम्वत्सर 2075 का स्वागत महासंघ की योजना अनुसार भव्य रूप से किया गया। संगठन द्वारा वर्ष प्रतिपदा के दिन महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में शिक्षक साथियों एवं विद्यार्थियों को शुभकामनाएँ देने, प्रसाद तथा साहित्य वितरण करने, रंगोली सजाने, चौराहों पर समाज बंधुओं का तिलक तथा मिश्री-काली मिर्च के प्रसाद से अभिनंदन करने के साथ-साथ भारतीय पंचांग की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से संगोष्ठियों एवं व्याख्यानों का आयोजन किया गया।

नव सम्वत्सर का महत्त्व प्रतिपादित करने हेतु आयोजित संगोष्ठियों की श्रृंखला में आर.आर., अलवर एवं जी. डी. कन्या राजकीय महाविद्यालय, अलवर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगोष्ठी में रुक्टा (राष्ट्रीय) के संगठन मंत्री डॉ. ग्यारसी लाल जाट का उद्बोधन प्राप्त हुआ। विषय प्रवर्तन डॉ गंगाश्याम गुर्जर ने किया। संचालन डॉ. लता शर्मा एवं धन्यवाद डॉ. अमिता मीणा ने ज्ञापित किया। इसी प्रकार महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर में नव संवत्सर पर आयोजित संगोष्ठी में रुक्टा-राष्ट्रीय के अध्यक्ष डॉ दिग्विजय सिंह मुख्य वक्ता रहे। अध्यक्षता प्रो. सुरेश अग्रवाल ने की तथा संचालन डॉ. अभिषेक वशिष्ठ ने किया। महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने उद्बोधन दिया। अध्यक्षता पर्यावरण विभाग के प्रो. प्रवीण माथुर ने की धन्यवाद प्रो. अरविंद पारीक ने ज्ञापित किया।

राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर में मुख्य वक्ता के रूप में शैक्षिक महासंघ के पूर्व अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल का पाथेय प्राप्त हुआ। सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में पेसिफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर के कुलपति एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के क्षेत्र संघचालक प्रोफेसर भगवती प्रकाश शर्मा ने भारतीय काल गणना की सटीकता, प्रामाणिकता और वैज्ञानिक आधार को विस्तार से अपने उद्बोधन में सिद्ध किया। संचालन डॉ. अनूप आत्रेय ने किया एवं अंत में धन्यवाद ज्ञापन इकाई सचिव डॉ. लीलाधर सोनी ने किया। कोटा के समस्त राजकीय महाविद्यालयों की संयुक्त संगोष्ठी राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा में आयोजित की गई, जिसमें मुख्य वक्ता कोटा विभाग के संघचालक श्रीमान बृजमोहन रहे। संचालन डॉ. अशोक सोनी ने किया अतिथि परिचय डॉ. वी.के. पंचोली एवं अध्यक्षता कार्यवाहक प्राचार्य डॉ. कपिल देव ने की। राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर में मुख्य वक्ता के रूप में श्रीमती सुप्रिया खुराना ने भारतीय नववर्ष की प्रासंगिकता पर व्याख्यान दिया। अध्यक्षता कार्यवाहक प्राचार्य डॉ. चेतन प्रकाश ने की एवं संचालन इकाई सचिव डॉ. एस. के. जैन ने किया। राजकीय विधि महाविद्यालय, अजमेर एवं एमएलवी राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा में डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने मुख्य वक्ता के रूप में उद्बोधन प्रदान किया, इकाई सचिव आर.सी मीणा ने संचालन किया। डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर में डॉ. दिग्विजय सिंह की अध्यक्षता में काव्य पाठ एवं वैचारिक व्याख्यान का आयोजन किया गया। राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य वक्ता डॉ. राम सिंह रहे। राजकीय महाविद्यालय, सिरोही में नव संवत्सर के अवसर पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया एवं यहाँ शिक्षकों ने दो टोलियों में बँटकर लगभग 125 घरों में बंदनवार बाँटी एवं नव वर्ष की शुभकामनाएँ दी, साथ ही महाविद्यालय परिसर में बहुत ही सुंदर रंगोली एवं सायंकालीन दीपदान का आयोजन किया। राजकीय महाविद्यालय टोंक में भी नवसंवत्सर पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें प्राचार्य डॉ. रामपाल बेनीवाल एवं प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य रामस्वरूप मीणा ने उद्बोधन दिया। इकाई सचिव डॉ. रेनू वर्मा ने संचालन किया।

जयपुर, अजमेर, अलवर, भरतपुर, बिकानेर, कोटा, बूंदी, बारां, नसीराबाद, अनूपगढ़, किशनगढ़, सरदारशहर, केकड़ी, धौलपुर, सांभर लेक, चूरू, झालावाड़, बाड़मेर, शिवगंज, गंगापुर सिटी, पाली, जोधपुर, करौली सहित कुल 103 स्थानों पर स्थित महाविद्यालयों में रुक्टा राष्ट्रीय की स्थानीय इकाइयों ने शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का तिलक लगाकर एवं मिश्री-कालीमिर्च का प्रसाद खिलाकर स्वागत किया।

रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा नव संवत्सर पर विचार गोष्ठी का आयोजन

राजर्षि महाविद्यालय, अलवर में रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा राजर्षि महाविद्यालय एवं राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में 17 मार्च, 2018 को भारतीय नववर्ष (नव संवत्सर, विक्रम संवत् 2075) पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ अतिथियों द्वारा माँ सरस्वती के विग्रह के समक्ष दीप प्रज्वलन करके किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राजकीय कला महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. आर.सी. खण्डूरी ने भारतीय नववर्ष की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय महत्ता के बारे में जानकारी दी। विषय प्रवर्तन रुक्टा (राष्ट्रीय) के प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर ने किया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि एवं राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय प्राचार्य डॉ. पी.एम. शर्मा ने भी विचार व्यक्त किये। राजर्षि महाविद्यालय प्राचार्य डॉ. अनूप श्रीवास्तव ने अध्यक्षीय उद्बोधन दिया। कार्यक्रम के दौरान सभी शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को तिलक लगाकर एवं प्रसाद वितरण करके नव संवत्सर की बधाई दी। मंच संचालन इकाई सचिव डॉ. राजेश कुमार गुप्ता एवं धन्यवाद ज्ञापन इकाई सह-सचिव डॉ. नीरज सैनी ने किया। इस अवसर पर बहुत बड़ी संख्या में शिक्षक एवं विद्यार्थी उपस्थित रहे।

शैक्षिक महासंघ की वि.वि. अनुदान आयोग अध्यक्ष से भेंट वार्ता

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के प्रतिनिधि मंडल ने महासंघ अध्यक्ष प्रो. जे. पी. सिंघल के नेतृत्व में 14 मार्च 2018 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो. डी. पी. सिंह, आयोग के सचिव प्रो. रजनीश जैन एवं संयुक्त सचिव श्रीमती अर्चना ठाकुर से नवीन यू.जी.सी. ड्राफ्ट रेग्यूलेशन की विसंगतियों के संबंध में विस्तृत भेंटवार्ता की। संगठन द्वारा पूर्व में प्रस्तुत ज्ञापनों एवं सुझावों के अनुरूप स्नातक व स्नातकोत्तर प्राचार्य दोनों को एक समान प्रोफेसर ग्रेड में रखने, लम्बित सी.ए.एस. मामलों में ए.पी.आई. में छूट देने, विश्वविद्यालयों में वरिष्ठ प्रोफेसर के पद सृजित करने तथा महाविद्यालयों में प्रोफेसर पद की संख्या की सीमा समाप्त करने हेतु यू.जी.सी. अध्यक्ष को धन्यवाद दिया गया।

संगठन द्वारा नवीन यू.जी.सी. ड्राफ्ट रेग्यूलेशन के संबंध में तथ्यों, तर्कों तथा दस्तावेजों सहित सुझाव देते हुए व्यापक रूप से शिक्षक एवं शिक्षा हित में संशोधन की माँग की गई। प्रतिनिधिमंडल द्वारा राज्य द्वारा पोषित विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को अतिरिक्त वित्तीय भार का न्यूनतम 80 प्रतिशत 5 वर्ष के लिए केन्द्र द्वारा वित्तीय सहयोग देने तथा यू.जी.सी. रेग्यूलेशन को एक समान रूप से देशभर में लागू करने, महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में न्यूनतम ठहराव की अवधि सात घण्टे के स्थान पर पूर्ववत् पाँच घण्टे करने तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों की गरिमा अनुरूप उचित आधारभूत ढाँचे की योजना करने, एमफिल/पीएचडी डिग्री हेतु एंट्री लेवल पर व सेवा काल में प्रोत्साहन स्वरूप अग्रिम वेतन वृद्धियाँ जारी रखने, अध्यापन कार्यभार असिस्टेंट प्रोफेसर/एसोसिएट प्रोफेसर हेतु अधिकतम सोलह घण्टे तथा प्रोफेसर हेतु अधिकतम चौदह करने, उच्च शिक्षा में प्रतिभाओं को आकर्षित करने हेतु एन्ट्री लेवल पर बेहतर वेतन देने तथा प्रत्येक ए.जी.पी. स्तर पर युक्तिकरण सूचकांक (इन्डेक्स ऑफ रेशनलाइजेशन) को न्यूनतम 2.72 करने की माँग की गई।

महासंघ को देश भर के शिक्षकों से मिले फीडबैक की जानकारी यूजीसी अध्यक्ष व सचिव को देते हुए सी.ए.एस. प्रमोशन हेतु पीएच.डी. की अनिवार्यता को समाप्त कर प्रमोशन को समयबद्ध रूप से लागू करने तथा पीएच.डी. की अनिवार्यता विश्वविद्यालयों में एसोसिएट प्रोफेसर व प्रोफेसर की सीधी नियुक्ति हेतु ही रखा जाने, पीएच.डी./एम.फिल. डिग्री हेतु लिये गये अवकाश की अवधि को शोध/अध्यापन अनुभव में जोड़ने, एसोसिएट प्रोफेसर हेतु सात के स्थान पर न्यूनतम पाँच तथा प्रोफेसर पद हेतु दस के स्थान पर न्यूनतम आठ प्रकाशन की पात्रता रखने, महाविद्यालय प्राचार्य का एक बार विधिवत् चयन प्रक्रिया द्वारा चयन होने पर पुनः एक ओर टर्म पीअर रिव्यू के ही आधार पर बढ़ाने, रिफ्रेशर व ओरिएंटेशन कोर्स हेतू छूट की अवधि 31 दिसम्बर, 2018 तक बढाने, छठे वेतन आयोग की विसंगतियों को दूर करने, शोधपत्रों के प्रकाशन हेतु सभी संकायों में समान रूप से प्रति शोधपत्र दस अंक देने तथा सेमिनार/कॉन्फ्रेंस में भाग लेने, पॉपूलर लेख लिखने, जर्नल का सम्पादन करने आदि गतिविधियों के भी सी.ए.एस. योजना में अंक देने की व्यवस्था करने रेगुलेशन को न्यायसंगत बनाने की माँग की।

महासंघ द्वारा यूजीसी के ध्यान में लाया गया कि कई विश्वविद्यालयों ने पीएच.डी. हेतु यू.जी.सी. रेग्यूलेशन 2009 को बाद में लागू किया है अतः ऐसे विश्वविद्यालयों में रेग्यूलेशन को अपनाने की तिथि से पूर्व पंजीकृत अभ्यर्थियों को नेट से छूट दी जाए। इसके साथ ही साथ असिस्टेंट प्रोफेसर के पद हेतु साक्षात्कार के लिए अभ्यर्थियों की शॉर्ट लिस्टिंग करने के मानदंडों को व्यावहारिक बनाने, अन्य अकादमिक स्टॉफ यथा पुस्तकालयाध्यक्ष, शारीरिक शिक्षक, शोध वैज्ञानिक आदि की सेवा शर्तों, सेवा निवृत्ति आयु व वेतन ढाँचा शिक्षकों के समान ही करने जैसे विषयों पर भी प्रमुखता से चर्चा की गई।

यू.जी.सी. अध्यक्ष, सचिव व सचिव ने एक-एक करके प्रत्येक विषय को विस्तार से समझा तथा इन सुझावों पर शीघ्र संगठन की भावनानुरूप सकारात्मक निर्णय लेने का मंतव्य व्यक्त किया। महासंघ के प्रतिनिधि मंडल में अध्यक्ष प्रो. जे. पी. सिंघल के साथ संगठन मंत्री महेन्द्र कपूर, महामंत्री शिवानंद सिन्दनकेरा, उच्च शिक्षा संवर्ग प्रभारी महेन्द्र कुमार, उच्च संवर्ग सचिव प्रो. मनोज सिन्हा तथा सहसचिव डॉ. नारायण लाल गुप्ता शामिल थे।

विद्यार्थियों को समाज को देने की मनोवृत्ति विकसित करनी चाहिए : डॉ. मनमोहन वैद्य

भारत की अवधारणा अध्यात्म आधारित अवधारणा है। भारतीय दृष्टि में अध्यात्म और एकात्म का समावेश है। भारतीय संस्कारों में सामाजिक परोपकार समाहित है। भारत के युवा वर्ग को भारत को सही मायने में समझने की जरूरत है। भारत में भारत को बनाने की जरूरत है। ये विचार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सर कार्यवाह डॉ. मनमोहन वैद्य ने एमडीयू में युवा एवं भारत विषय पर विशेष व्याख्यान देते हुए व्यक्त किए। यह विशेष व्याख्यान एमडीयू के चौ. रणबीर सिंह इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल एडं इकोनॉमिक चेंज, एमडीयू शैक्षिक संघ एवं विश्व संवाद केन्द्र के संयुक्त तत्वावधान में किया गया। डॉ. मनमोहन वैद्य ने कहा कि भारत का भविष्य युवाओं के हाथ में है। भारत की सांस्कृतिक विविधता, विविधता में एकता, सास्कृतिक विशिष्टता का पूरी दुनिया में कोई सानी नहीं। उन्होंने विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में सार्थक विद्या की परंपरा सृजित करने की बात कही, तथा विद्यार्थियों को समाज को देने की मनोवृत्ति विकसित करने एवं सार्थक जीवन जीने का संदेश दिया। कुलपति प्रो. बिजेन्द्र कुमार पूनिया ने कहा कि युवा वर्ग को भारत के इतिहास एवं संस्कृति से प्रेरणा लेकर राष्ट्र निर्माण में योगदान देना चाहिए। इस कार्यक्रम में एमडीयू के डीन, कॉलेज डेवलपमेंट काउंसिल तथा एमडीयू शैक्षिक संघ के सचिव प्रो. युद्धवीर सिंह ने कहा कि वैश्विक परिदृश्य में बदलाव आया है। आभार प्रदर्शन सामाजिक विज्ञान संकाय की अधिष्ठाता तथा चौ. रणबीर सिंह इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल एडं इकोनॉमिक चेंज की निदेशिका प्रो. नीना सिंह ने किया। मंच संचालन विवेक बाल्याण ने किया। इस अवसर पर एमडीयू शैक्षिक संघ के अध्यक्ष प्रो. नेतराम गर्ग, विश्व संवाद केन्द्र, हरियाणा के सह-सचिव डॉ. विवेक सिंह, वीबीएलयू, भिवानी के कुलपति प्रो. आर.के. मित्तल, एमडीयू रजिस्ट्रार जितेन्द्र भारद्वाज, वाईएमसीए, विजय कुमार, समेत एमडीयू के प्राध्यापक, शोधार्थी विद्यार्थी व अन्य उपस्थित रहे।

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ

'प्राथमिक शिक्षा : दशा एवं दिशा' विषयक प्रांतीय परिसंवाद

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ का दो दिवसीय 'प्राथमिक शिक्षा : दशा एवं दिशा' विषयक प्रांतीय परिसंवाद 29 व 30 मार्च 2018 को राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला छात्र लालपानी में संपन्न हुआ। इस प्रांतीय परिसंवाद में अलग-अलग सत्रों में शिक्षा विभाग के शिक्षा निदेशक डॉ अमरदेव शिक्षा निदेशक उच्च शिक्षा, श्रीमान मनमोहन शर्मा, शिक्षा निदेशक प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांत प्रचारक श्रीमान संजीवन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांत संघचालक डॉ. वीर सिंह रांगड़, केंद्रीय विश्वविद्यालय काँगड़ा के कुलपति डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री तथा इस परिसंवाद के समापन पर हिमाचल प्रदेश के शिक्षा मंत्री सुरेश भारद्वाज, शिमला संसदीय सीट के सांसद वीरेंद्र कश्यप, प्रदेश के विभिन्न स्कूलों से आए हुए शिक्षक जिन्होंने अपने स्कूलों में श्रेष्ठ काम किया, प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र में शोध किया, ऐसे 27 शिक्षकों ने अपना शोध पत्र इस परिसंवाद में प्रस्तुत किया। उद्घाटन के शुभ अवसर पर शिक्षा निदेशक डॉ. अमरदेव ने कहा कि कक्षा में अध्यापक और छात्र के बीच में तनाव रहित वातावरण होना चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा निदेशक मनमोहन शर्मा ने कहा कि वर्तमान में समाज और शिक्षक के बीच में भावनात्मक रिश्ते कमजोर हुए हैं, उनको सुदृढ़ करने की जरूरत है। प्रांत प्रचारक संजीवन ने प्राथमिक शिक्षा में संस्कारों के समावेश की आवश्यकता पर बल दिया। प्रांत संघचालक डॉ. वीर सिंह रांगडा ने कहाँ कि वर्तमान शिक्षा पद्धति को बदलने की जरूरत है, यह शिक्षा दोषपूर्ण है। केंद्रीय विश्वविद्यालय कुलपति डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री ने कहा कि हम बच्चों को डरा कर उसके अंदर की जिज्ञासा को बचपन में ही दबा देते हैं इससे बच्चे के अंदर जानने की इच्छा शक्ति खत्म हो जाती है और बच्चों को जबरदस्ती मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषाओं से सिखाने से बच्चे का मौलिक ज्ञान खत्म हो जाता है यही कारण है कि भारत वर्ष में विज्ञान के क्षेत्र में, अन्य क्षेत्रों में बहुत कम मौलिक काम हुए।

समापन सत्र के अवसर पर शिक्षा मंत्री सुरेश भारद्वाज ने कहा कि हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य कर रहा है, शिक्षा सुधार के लिए नई पहल शुरू की है। मेरा आह्वान है कि अन्य संगठन भी ऐसा काम करें और ऐसा चिंतन करने से शिक्षा की दशा सुधरेगी, शिक्षा को नई दिशा मिलेगी और सरकार शिक्षक महासंघ द्वारा किए जाने वाले ऐसे सभी प्रयासों में पूरी मदद करेगी।

केकड़ी में चिराग प्रकाश से नववर्ष अभिनन्दन

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) केकड़ी, अजमेर के द्वारा पूर्व उपाध्यक्ष बिरदी चन्द वैष्णव के संयोजन में नववर्ष की पूर्व संध्या पर सैकड़ों शिक्षकों द्वारा हाथ में चिराग लेकर रैली का आयोजन किया। चिराग प्रकाश रैली को अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के क्षेत्र प्रमुख बजरंग प्रसाद मजेजी ने नववर्ष का महत्त्व बताते हुए झण्डी दिखाकर विशाल रैली का शुभारंभ किया।

बैण्ड पर देश भक्ति गीतों की मधुर स्वर लहरियों एवं केसरिया ध्वज के साथ आगे महिला शिक्षकों के हाथ में मशाल ले भारत माता की जय के घोष लगाये। सैकड़ों शिक्षकों ने पंक्तिबद्ध लगभग एक किलोमीटर जुलूस में मशाल लेकर उच्च माध्यमिक विद्यालय प्रांगण से अजमेरी गेट, घंटा घर, मुख्य बाजार होते हुए बस स्टैण्ड से उपखण्ड अधिकारी मार्ग से प्रस्थान स्थल पर विसर्जन हुआ। रैली को उपशाखा अध्यक्ष कैलाश चन्द जैन, मंत्री राजेन्द्र सुजोडिया ने संबोधित किया। वाहन रैली में एक वाहन पर भारत माता की झाँकी का संयोजन किया। नगर वासियों ने मार्ग में जुलूस पर पुष्प वर्षा कर भारत माता, वन्दे मातरम्, नववर्ष शुभ हो के जय कारे लगाये।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ राजकोट द्वारा कार्यशाला का आयोजन

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ राजकोट इकाई एवं IQAC, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय द्वारा एक '7th Pay Regulation – 2018 for University / College Teachers' वर्कशॉप का आयोजन हुआ। इस कार्यशाला में 150 से ज्यादा सौराष्ट्र विश्वविद्यालय एवं संलग्न कालेजों में कार्यरत अध्यापकों ने भाग लिया।

उद्घाटन सत्र में सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. कमलभाई डोडिया, गुजरात टेक्नोलॉजी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. नवीनभाई शेठ, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. प्रतापसिंह चौहान एवं IQAC, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के डायरेक्टर डॉ. गिरीश भिमानी उपस्थित रहे। उपस्थित सभी महानुभावों एवं अध्यापकों का स्वागत एवं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का परिचय सौराष्ट्र विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ राजकोट इकाई के संयोजक डॉ.मनीष शाह ने किया और अंत में आभार विधि सह संयोजक डॉ.अतुल गोसाई ने प्रकट किया।

दूसरे सत्र में IQAC, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के कोओर्डीनेटर डॉ. आलोक चक्रवाल की अध्यक्षता में हुआ जिसमें डॉ. एस. जे. परमार द्वारा महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ और अंत में पूछे गए प्रश्नों का समाधान किया गया। कार्यक्रम का संचालन सौराष्ट्र विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ राजकोट इकाई महिला विंग की संयोजिका डॉ. नीलाम्बरीबहन दवे ने किया।